डबल्यूटीओ के एग्रीमंट ऑन एग्रिकल्चर को ख़त्म किया जाए खाद्य संप्रभुता की रक्षा में

एस.पी. शुक्ला
माइकल फ़रवरी

फ़ोकस ऑन द ग्लोबल साउथ और
ऑल इंडिया पीपल्स साइन्स नेटवर्क
द्वारा प्रकाशित
रोज़ा लक्सम्बेर्ग स्टीफ़टंग - साउथ एशिया
के सहयोग से
फ़रवरी, 2022

यह डोज़ियर/फ़ाइल एस.पी. शुक्ला* और माइकल फ़खरी** द्वारा डबल्यूटीओ और यूएन को लिखे गए लेख और प्रस्तुतियों का संकलन है

डिज़ाइन : विकास ठाकुर

कवर इमेज : गूगल कॉमन्स इमेजिज़

तस्वीर (पन्नों पर) : गूगल कॉमन्स इमेजिज़ और विकास ठाकुर

प्रकाशक : रोज़ा लक्सम्बेर्ग स्टिफ़टंग के दक्षिण एशिया कार्यालय के सहयोग से फ़ोकस ऑन द ग्लोबल साउथ एवं ऑल इंडिया पीपल्स साइन्स नेटवर्क द्वारा प्रकाशित

फ़ोकस ऑन द ग्लोबल साउथ एशिया स्थित एक्टिविस्ट थिंक टैंक है जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बदलाव के लिए विश्लेषण करने और विकल्प तैयार करने का काम करता है।

ऑल इंडिया पीपल्स साइन्स नेटवर्क(एआईपीएसएन) पूरे भारत के 40 से ज़्यादा जनवादी वैज्ञानिक संगठनों का नेटवर्क है।

यह प्रकाशन रोज़ा लक्सम्बेर्ग स्टिफ़टंग द्वारा प्रायोजित है। इसे फ़ेडरल मिनिस्टरी ऑफ़ इकनॉमिक कोऑपरेशन और डेव्लपमेंट ऑफ़ द फ़ेडरल रिपब्लिक ऑफ़ जर्मनी के फ़ंड का सहयोग मिला है। यह प्रकाशन या इसके हिस्से बग़ैर किसी शुल्क के इस्तेमाल किए जा सकते हैं। ऑरिजनल प्रकाशन का उचित संदर्भ देना अनिवार्य है। इस प्रकाशन की सामग्री की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ प्रकाशक की है, और यह आरएलएस की छवि नहीं दर्शाता है।

* एस.पी. शुक्ला इंडियन एड्मिनिस्ट्रेटिव सर्विस(आईएएस) से रिटायर्ड हैं। वे पूर्व सेक्रेटरी, फ़ाइनेंस सेक्रेटरी और जेनेवा में जीएटीटी के राजदूत रह चुके हैं।

** माइकल फ़खरी संयुक्त राष्ट्र के 'राइट टु फ़ूड' के विशेष दूत हैं।

फ़रवरी, 2022

FOCUS ON THE GLOBAL SOUTH

JOSHI-ADHIKARI INSTITUTE OF SOCIAL STUDIES

ROSA LUXEMBURG STIFTUNG SOUTH ASIA

विषय-सूची

भूमिका	1
कृषि विश्लेषण और कार्रवाई की एक पहल	3
कृषि और डबल्यूटीओ	7
व्यापार, निवेश और टेक्नोलॉजी पर वैश्विक व्यवस्था के लिए एक नया प्रतिमान	14
सप्लीमेंट लेख : व्यापार, निवेश और टेक्नोलॉजी पर वैश्विक व्यवस्था के लिए एक नया प्रतिमान	20
भारत के किसानों, एक हो !	27
कृषि संकट : नई पहलों की ज़रूरत	32
संयुक्त राष्ट्र के 'राइट टु फ़ूड' के विशेष दूत का वैश्विक खाद्य संकट पर ख़त	35

भूमिका

विश्व व्यापार संगठन(डबल्यूटीओ) 12-15 जून 2022 तक महामारी और यूक्रेन युद्ध के मद्देनज़र अपने 12वें मंत्रिस्तरीय सम्मेलन(एमसी) की मेज़बानी करेगा। जेनेवा में होने वाले इस सम्मेलन में कोविड टीकों तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए पेटेंट हटाने का प्रस्ताव और चिकित्सा विज्ञान, कृषि, मत्स्य पालन और डबल्यूटीओ में सुधार जैसे प्रमुख मुद्दे शामिल हैं।

भारत एक बार फिर से एग्रीमंट ऑन एग्रिकल्चर(एओए) समझौतों में बैकफ़ुट पर है। 2021 में जब महामारी का प्रकोप बढ़ा, ग्लोबल हंगर इंडेक्स में भारत 101वें स्थान पर फिसल गया(2014 में 63 पर था)। मई 2022 में, यूक्रेन युद्ध के दौरान दुनिया को गेहूं निर्यात करने की भारत की महत्वाकांक्षा को उत्पादन में गिरावट और बढ़ती क़ीमतों की वजह से झटका लगा। जबकि महामारी ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) को बढ़ाने की आवश्यकता को रेखांकित किया है, डबल्यूटीओ में भारत पर विकसित देशों की तरफ़ से खाद्य प्रणाली और छूट को कम करने का दबाव है।

इस डॉसियर में हम लेखों की सिरीज़ लेकर आए हैं जिनसे पाठकों को भारत में खेती और फ़ूड पॉलिसी के बारे में और कृषि व्यवसाय केंद्रित खेती के बारे में एओए के पक्षपात के बारे में जानकारी मिलेगी। पहले 6 लेख एसपी शुक्ल ने लिखे हैं, जो जनरल एग्रीमंट ऑन टैरिफ़ ट्रेड(जीएटीटी) में भारत के पूर्व एंबेसडर रहे हैं।

यह लेख जो मूलतः https:// www.thecitizen.in/ पर छपे थे, भारत में कृषि संकट के तमाम पहलुओं पर बात करते हैं। शुक्ला इस बात पर रौशनी डालते हैं कि 2012 से 2019 के बीच क़रीब 70 लाख परिवारों ने खेती करना छोड़ दिया है। रोज़गार के मौक़ों और कमाई में कमी की वजह से ग्रामीण क्षेत्रों के ग़रीबों के लिए अनाज की पर कैपिटा उपलब्धता में काफ़ी गिरावट हुई है, जिससे क़रीब तीन चौथाई ग्रामीण आबादी ग़रीबी रेखा के नीचे पहुँच गई है। वह आगे इस बात पर भी ज़ोर देते हैं कि कॉर्पोरेट खेती के सिंड्रोम के तहत पॉलिसीमेकिंग आज भी जारी है और यह तर्क देते हैं कि डबल्यूटीओ का एओए भारत और विकासशील देशों के लिए उपोयोगी नहीं है। इसे टेम्परेट ज़ोन, पूंजी प्रधान, कॉर्पोरेट कृषि व्यवसाय संचालित, एक्सपोर्ट पर केंद्रित, किसानों के प्रति संवेदनहीन तरीक़े के तौर पर और सामूहिक आजीवीका को ख़तरे में डालने वाली खेती के रास्तों पर तैयार किया गया था। एओए की जगह पर, शुक्ला विकासशील देशों के लिए एक नए ग्लोबल सिस्टम ऑफ़ ट्रेड प्रेफ़रेंसिस(जीएसटीपी) समझौते की वकालत करते हैं जो कि दक्षिण-दक्षिण सहयोग और सामूहिक आत्म निर्भरता के लक्ष्य की ओर निरंतर काम करे। शुक्ला कहते हैं कि डबल्यूटीओ के अंदर जी-20 समूह की इस लक्ष्य को दोबारा ज़िंदा करने और इसे लागू करने की ऐतिहासिक ज़िम्मेदारी है।

माइकल फ़खरी(संयुक्त राष्ट्र के राइट टु फ़ूड के दूत) की रिपोर्ट दिखाती है डबल्यूटीओ का एओए राइट टु फ़ूड(भोजन का अधिकार) को पाने में बड़ी रुकावट रहा है। मौजूदा नियमों को बदलने की ज़रूरत है, मगर यह मुमकिन नहीं लगता कि विश्व व्यापार संगठन के सदस्य इक्विटी की लंबे समय से चली आ रही मांगों को पूरा करने के लिए एओए में बदलाव कर सकते हैं। फ़खरी तर्क देते हैं कि एओए को ख़त्म कर देना चाहिए। और सरकारों और सामाजिक आंदोलनों को गरिमा, भोजन का अधिकार, आत्मनिर्भरता, एकजुटता, विकास की सीमाओं को मानना, अर्थव्यवस्था के परिवर्तन और अच्छे काम के सिद्धांतों के आधार पर नए अंतरराष्ट्रीय खाद्य समझौतों पर बातचीत करने के लिए आज़ाद होना चाहिए।

भारत के किसान आंदोलन के धीरज, नयापन, और राष्ट्रीय चरित्र की भवन को सलाम करते हुए, यह रिपोर्ट इस बात किसान नेताओं को अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी शामिल होने और खेती को डबल्यूटीओ से बाहर रखने की ज़रूरत को भी रेखांकित करती है।

रिपोर्ट इस ओर भी इशारा करती है कि एमसी 12 के मद्देनज़र हो रहे कृषि समझौतों में विकासशील देशों के पास कोई रास्ता नहीं बचा है। यही समय है कि दक्षिण एक साथ आकर कृषि में अपने संयुक्त हितों की रक्षा करते हुए अपनी आवाज़ों को निर्याणक और रणनीतिक तौर पर उठाए। एकजुटता में,

ऑल इंडिया पीपल्स साइन्स नेटवर्क एवं फ़ोकस ऑन द ग्लोबल साउथ जून 2022, नई दिल्ली

1. कृषि विश्लेषण और कार्रवाई की एक पहल

एस.पी. शुक्ला

2007

हम हर तरफ़ से एक गहरा कृषि संकट का सामना कर रहे हैं। इसकी गवाहियाँ हर जगह मौजूद हैं और इन्हें नज़रअंदाज़ करना मुमकिन नहीं है। कृषि क्षेत्र में ग्रामीण श्रमिकों की बढ़ोतरी होना बंद हो गई है। भूमिहीन मज़दूरों के लिए मौजूदा भूमि को अपनाने और जीवनयापन के लिए कमाई कर पाने का संघर्ष ज़्यादा और घातक हो गया है। रिर्वस टेनेन्सी (???) का चलन बढ़ रहा है। रोज़गार की तलाश में शहरों की ओर पलायन बढ़ रहा है, लिहाज़ा शहरों में हर तरफ़ झुग्गी-झोपड़ियाँ भी बढ़ रही हैं। यह हालात बहुत ख़तरनाक हैं और इनसे सामाजिक और राजनीतिक ताने-बाने के अस्त व्यस्त होने का भी ख़तरा मंडरा रहा है। कृषि क्षेत्र में सरकारी निवेश तेज़ी से कम हो रहा है, जिसकी वजह से उत्पादन ग्रोथ न सिर्फ़ कम हुआ है बल्कि नकारात्मक ग्रोथ भी देखने को मिला है। र रौशनी डालते हैं कि 2012 से 2019 के बीच क़रीब 70 लाख परिवारों ने खेती करना छोड़ दिया है। रोज़गार के मौक़ों और कमाई में कमी की वजह से ग्रामीण क्षेत्रों के ग़रीबों के लिए अनाज की पर कैपिटा उपलब्धता में काफ़ी गिरावट हुई है, जिससे क़रीब तीन चौथाई ग्रामीण आबादी ग़रीबी रेखा

के नीचे पहुँच गई है। इनकी तुलना में थोड़े अमीर किसान जो नकदी फ़सलों के ज़रिये ज़्यादा कमाई करने या मुख्य फ़सलों को उगा कर बाज़ार में ज़्यादा फ़ायदा कमाने की कोशिश करते हैं उनकी स्थिति भी बदतर हो गई है। इसकी वजह है अस्थिर वैश्विक कृषि बाज़ार से उनका नाता होना, जो एक तरफ़ तो गहरी मंदी के दौर में हुआ है, और दूसरी तरफ़ इनपुट की लागत में नीति-प्रेरित तेज़ वृद्धि, क़र्ज़ मिलने में भारी कमी और उचित दामों पर सरकारी ख़रीद के दौर में हुआ है। चारों तरफ़ बढ़ रही किसानों की आत्महत्याएँ इस बारे में एक दर्दनाक हक़ीक़त बयान करती हैं।

हैरानी की बात यह है कि आधिकारिक नीति स्तर का रवैया इस हक़ीक़त के प्रति असंवेदनशील है। ग्रामीण रोज़गार प्रोग्राम की हालिया पहल भी सिर्फ़ एक ख़ानापूर्ति की तरह लग रही है जो इस संकट का समाधान करने के लिए काफ़ी नहीं है। बाक़ी पहलों, जैसे कृषि क़र्ज़ में प्रस्तावित बढ़ोतरी के फ़ायदे बढ़ा चढ़ा कर पेश किए जा रहे हैं। अपने आप में यह पहले से क़र्ज़ में डूबे छोटे और माध्यम वर्ग के किसानों और इनकी तुलना में अमीर किसान जिन्हें सूदखोर साहूकारों ने क़र्ज़ लेना पड़ा है, उनके लिए कोई समाधान पेश नहीं करता है। इस पहल की कमी न्यूनतम समर्थन मूल्य(एमएसपी) को ख़त्म/या कम करने की नीतियों से ही स्पष्ट हो जाती है। इसके लाभार्थियों की व्यापक परिभाषा में बड़े कृषि व्यवसाय शामिल हैं, जो कि संकट का सामना कर रहे किसानों के व्यापक वर्ग के लिए इसकी उपयोगिता को कम कर देती है।

कॉर्पोरेट खेती के सिंड्रोम के तहत पॉलिसीमेकिंग आज भी जारी है। लंबे समय से "भूमि सुधार" को "कृषि सुधार" का नाम दिया जा रहा है। इस नीति की बुनियाद ही यही है कृशिन क्षेत्र में कॉर्पोरेट पूंजी की एंट्री के रास्ते खोल दिये जाएँ। यह सीधे तौर सीलिंग क़ानूनों को निरस्त कर के कॉर्पोरेट स्वामित्व को स्थापित कर के किया जा रहा है और/या अप्रत्यक्ष तौर पर यह कांट्रैक्ट फ़ार्मिंग का सहारा लेकर और इनपुट की ख़रीद और आउटपुट की बिक्री दोनों के लिए कॉर्पोरेट क्षेत्र में किसानों की निर्भरता को बढ़ा कर किया जा रहा है। इस नीति के लिए दिये गए तर्कों में पूंजी और आधुनिक प्रौद्योगिकी का समावेश, फ़सल पैटर्न का विविधीकरण, बेहतर स्टोरेज के ज़रिये वैल्यू बढ़ाना, प्रोसेसिंग और मार्केटिंग शामिल हैं। इसके अलावा, कॉर्पोरेट क्षेत्र के काम करने का एरिया विश्व व्यापार संगठन(डबल्यूटीओ) के एग्रीमंट ऑन एग्रिकल्चर(एओए) के ढांचे के अंतर्गत वैश्विक कृषि बाज़ार से जुड़ कर तैयार हुआ है। एओए को टेम्परेट ज़ोन, पूंजी प्रधान, कॉर्पोरेट कृषि व्यवसाय संचालित, एक्सपोर्ट पर केंद्रित, किसानों के प्रति संवेदनहीन तरीक़े के तौर पर और सामूहिक आजीवीका को ख़तरे में डालने वाली खेती के रास्तों पर तैयार किया गया था। भारतीय कृषि वर्तमान समय में कुल आबादी के दो तिहाई हिस्से के गुज़र बसर का साधन है, इसमें छोटे और माध्यम वर्ग के किसानों की आबादी ज़्यादा है और यह आज भी बारिश-आधारित चरित्र को ही लिए हुए है। इस भारतीय कृषि के 'बड़े बदलाव के लिए किसी रास्ते के बारे में नहीं सोचा गया है। और न ही बड़े प्रभावों की खोज की गई है।

कृषि संकट का मूल कारण है कि मौजूदा कृषि प्रणाली पारंपरिक और अनिवार्य तौर पर खेती पर निर्भर ग्रामीण इलाक़ों में श्रमिकों की वृद्धि को अपनाने में सक्षम नहीं है। इसके अलावा इन कारणों में ग्रामीण, कृषि प्रधान इलाक़ों से बड़ी संख्या में श्रमिकों का अनचाहा पलायन और गौरवपूर्ण जीवनयापन के लिए किसी विकल्प का न होना भी शामिल है।

मौजूदा खेती में शामिल हैं :

A. सीमांत और छोटे किसानों का बड़ा समूह जिनके पास दो हेक्टेयर से अधिक जोत नहीं है (कुल परिचालन जोतों का लगभग 80% और 1995-96 में आधिकारिक तौर पर अनुमानित कुल खेती

वाले क्षेत्र का 36% हिस्सा) जो आम तौर पर जीविका निर्वाह खेती करते हैं और भूमिहीन श्रमिकों की बड़ी भीड़ की व्यापकता (2001 में खेतिहर मज़दूरों का आधिकारिक अनुमान 10.7 करोड़ था);

B. क्रमशः चार और दस हेक्टेयर से बड़ी जोत वाले मध्यम और बड़े भूमिधारकों की बहुत कम संख्या, (कुल परिचालन जोत का लगभग 7% और कुल खेती वाले क्षेत्र का 40%) जो पूंजीवादी खेती करते हैं;

C. इनपुट की आपूर्ति के माध्यम से कॉर्पोरेट कहती के एजेंटों की घुसपैठ और बाज़ार पर कंट्रोल

D. पूंजी, टेक्नोलॉजी और मार्केट तक पहुँच के नाम पर खेती में कॉर्पोरेट सेक्टर की शुरूआती एंट्री

E. खेतिहर मज़दूरों का (a) में बताए गए इलाक़ों से (b) और (c) में बताए गए इलाक़ों तक बड़े पैमाने पर पलायन

F. ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ रहे श्रमिकों को संभालने में (b), (c) और (d) की पूरी तरह से कमी; पिछले दशकों से सेकंडरी सेक्टर का रुका हुआ विकास, और हाल ही में श्रमिक के इस्तेमाल को कम करने या डिस्प्लेस करने वाली नीतियों के तहत लाई गई टेक्नोलॉजी जिससे रोज़गार के मौक़े और कम हो रहे हैं; और हर जगह कृषि/ग्रामीण श्रमिक को कम वेतन देने का बढ़ता चलन(और शहरी इलाक़ों तेज़ी से बढ़ते तथाकथित 'सर्विस' सेक्टर;

G. विश्व कृषि बाज़ारों के साथ भारतीय कृषि के बढ़ते एकीकरण किसानों और भूमिहीन मज़दूरों की आजीविका ख़तरे में आ रही है [देखें (a)] और तुलनात्मक रूप से अमीर किसानों पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है [देखें (b)], मगर कॉर्पोरेट क्षेत्र के लिए फ़ायदा कमाने के रास्ते खुल रह रहे हैं [देखें (c) और (d)]।

कृषि स्थिति में नए और पुराने दोनों विरोधाभास हैं। (a) और (b) के बीच लगातार विरोधाभास दिख रहा है। एक तरफ़ (b) और दूसरी तरफ़ (c) और (d) के रिश्तों में सहयोग के साथ साथ विरोध भी है। विश्व कृषि बाज़ार में चल रहे एकीकरण और साइक्लिक मंदी के साथ विरोधाभासी प्रवृत्ति तेज़ हो गई है।

सरकारी नीतियाँ साफ़ तौर पर (c) और (d) के हित में हैं, (b) की तरफ़ अनिश्चित हैं और (a) की भले ही विरोधी न हों, मगर उनके प्रति उदासीन हैं। यह एओए प्रतिमान के साथ सम्मिलित है। इसकी वजह से विरोधाभास तेज़ी से बढ़ रहे हैं।

सबसे ज़रूरी काम इन विरोधाभासों के तरीक़ों का विश्लेषण करते हुए कृषि के व्यापक विरोधाभासों के बारे में एक रणनीतिक समझ बनाने का है।

कृषि संकट से पैदा हुई चुनौती पैमाने और राजनीतिक प्रभावों दोनों के स्तर पर अभूतपूर्व है। क्या मुख्य रूप से (a) के जीवनयापन और सुधार और (b) के लिए आवास के उपाय को सुनिश्चित करने के लिए इस चुनौती को समझते हुए कृषि प्रणाली में बुनियादी बदलाव किए जा सकते हैं? इसका कोई ख़ाका मौजूद नहीं है। भूमि तक पहुँच का सार्वभौमिक अधिकार और सामूहिक/सामुदायिक स्तर की खेती का चाइनीज़ उदाहरण ही

एकमात्र ऐतिहासिक विकल्प दिखाई देता है। हमारा अस्थायी विकल्प क्या है? ज़्यादा क़र्ज़, क़र्ज़-माफ़ी, फ़ूड फॉर वर्क जैसे उपाय ज़रूर मदद करेंगे मगर क्या यह कृषि संकट का समाधान हैं?

किसी समस्या को दूसरे छोर से देखना यानी उन पहलुओं को नज़रअंदाज़ कर देना जिनसे संकट पैदा हुआ है, कोई शायद कह सकता है एओए और सरकारी नीतियाँ कृषि संकट के सवाल की तरफ़ पहला क़दम हैं। मगर यह सिर्फ़ पहला क़दम ही हैं।

आत्मनिर्भर ड्राइ फ़ार्मिंग; ओर्गेनिक/जैविक, ग़ैर-पूंजी आधारित खेती; बायो मास एनर्जी पर आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था जैसे प्रयोग, वॉटर शेड डेवलपमेंट; भूमि के एरिया को न देखते हुए सबको पानी मिलना; और भूमि पुनर्वितरण के लिए जुझारू संघर्ष और भूमिहीन मज़दूरों के लिए उचित वेतन शायद मौजूदा कृषि में हो रहे भेदभाव के लिए कुछ संभावित उपाय हैं। यह भेदभाव ऐतिहासिक, भौगोलिक, जलवायु और जनसांख्यिकीय वजहों के लिए अहम हैं। इन भेदभावों के बावजूद, एओए और कॉर्पोरेट खेती पर आधारित इस नीति के औचित्य पर सवाल नही उठ रहे हैं। वहीं दूसरी ओर, प्रोत्साहन(कॉज़ेशन) की एक अंतर्निहित एकता भी नज़र आती है जो समतावादी बुनियादी बदलाव का आह्वान करती है।

इस टास्क (काम) का विस्तार दो स्तरों पर किए जाने की ज़रूरत है - एनालिटिकल और मोबिलाइज़ेशनल।

एनालिटिकल(विश्लेषण संबंधी) पहलू की बात करें तो हमें तर्क के 3 अहम बिन्दु मिलते हैं। यह तर्क दिया जाता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर रोज़गार सृजन कार्यक्रमों के साथ कृषि क्षेत्र में बढ़ा निवेश (सिंचाई, अनुसंधान एवं विकास (आरएंडडी), क़र्ज़ देने की बढ़ी सीमा, लाभकारी क़ीमतों पर सुनिश्चित सरकारी ख़रीद) समाधान में प्रमुख तत्व हैं। तर्क का दूसरा बिन्दु कृषि क्षेत्र के पक्ष में व्यापार की शर्तों को जानबूझकर झुकाने और खेती के इनपुट की पर्याप्त राज्य सब्सिडी पर ज़ोर देता है। यह दोनों दृष्टिकोण विश्व कृषि बाज़ार के साथ चल रहे एकीकरण के हानिकारक प्रभावों को पहचानते हैं, लेकिन वे स्पष्ट रूप से भारतीय कृषि को एओए से जोड़ने के लिए तर्क नहीं देते हैं।

तीसरा दृष्टिकोण कृषि प्रणाली के संरचनात्मक परिवर्तन के साथ बाक़ी अर्थव्यवस्था/राजनीति में परिवर्तन पर ज़ोर देता है। ऐसा माना जाता है कि इस तरह के परिवर्तन लाने के लिए पहले से एक शर्त है- हमारी कृषि को एओए से अलग करना।

मोबिलाइज़ेशन के पड़ाव पर, विरोधाभास उजागर करने होंगे और उन पर बात करनी होगी। विविध और एक जैसे आंदोलनों/संघर्षों से/उनके बीच बात करने से इस काम की तर्कीय प्रक्रिया और साफ़ होगी। साथ ही, इसके ज़रिये हमें हमें कृषि क्षेत्र के भेदभाव के बारे में ज़्यादा जानकारी मिलेगी और प्रोत्साहन(कॉज़ेशन) की अंतर्निहित एकता के बारे में भी पता चलेगा।

यह दोनों टास्क- एनालिटिकल और मोबिलाइज़ेशनल पूरी तरह से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। एनालिटिकल पहलू के ज़रिये मोबिलाइज़ेशन में मदद मिलनी चाहिए। और इसी तरह से, आंदोलनों और संघर्षों का अनुभव एनालिटिकल काम को बल देगा और हम एक वस्तुनिष्ठ(औब्जैकटिव) हक़ीक़त को समझ पाएंगे।

2. कृषि और WTO

एस.पी. शुक्ला

03.07.2007

जर्मनी के पॉट्सडैम में तथाकथित जी-4 समझौतों (अमेरिका, ईयू, ब्राज़ील और भारत) की हालिया असफलता ने एक बार फिर से कृषि के मुद्दे की संवेदनशीलटा को हमारे सामने लाकर खड़ा कर दिया है। इससे ज़्यादा अहम बात यह है कि इसने कृषि उत्पादन और व्यापार पर एक अंतर्राष्ट्रीय अनुशासन थोपने के पीछे नॉर्थ के असली मक़सद को भी उजागर किया है। यह संदेश दोहा राउंड के व्यावहारिक 'अपोलोजिस्ट्स' को साफ़-साफ़ सुनाई दिया होगा। इस बात की कोई संभावना नहीं है कि अमेरिका मौजूदा स्तर या औसत स्तर के आसपास भी अपनी सब्सिडी को बाध्य करेगा, कोई कमी करने की तो बात ही छोड़ दें।

उनका तथाकथित ओटीडीएस(ओवरऑल ट्रेड डिस्टोर्टिंग सपोर्ट, एक तकनीकी और अस्पष्ट वर्गीकरण जो उनके सब्सिडीकरण के केवल एक हिस्से की बात करता है) 2005 में 12 बिलियन डॉलर था और 2006 में 10.6 बिलियन डॉलर था। उनका "उदार" प्रस्ताव ओटीडीएस को "कम" कर के 17 बिलियन डॉलर करने का था! ईयू इसपर राज़ी हो गया क्योंकि कृषि आयात पर टैरिफ़ को कम कर के 50% से 51% करने के उनके प्रस्ताव(जी-20 देशों ने 54% पर ज़ोर दिया था और अमेरिका 60% पर ज़ोर दे रहा था) और "संवेदनशील उत्पाद" की बड़ी संख्या के संबंध में इस मामूली सी कटौती के अपवादों को तराशने पर ज़ोर देने को अमेरिका ने मान लिया था! यह साफ़ तौर पर आपसी तेल-मेल का मामला था। दोनों इस बात पर सहमत थे कि इन "उदार छूट" के बदले में विकासशील देशों को कृषि और औद्योगिक दोनों उत्पादों पर अपने टैरिफ़ को कम करना चाहिए। और वह भी इस तरीक़े से कि न सिर्फ़ थर्ड वर्ल्ड के छोटे और हाशिये क किसानों की आजीविका यूएसए और ईयू से सब्सिडी पर निर्यात की वजह से ख़तरे में पड़े, बल्कि विकासशील देशों के पास अपने उत्पादन की रक्षा और उसे बढ़ावा देने के लिए जो नीतियाँ उपलब्ध हैं वह भी गंभीर रूप से प्रतिबंधित हो जाएँ और वे वस्तुतः ग़ैर-औद्योगिकीकरण के रास्ते पर जाने के लिए मजबूर हो जाएँ।

इसके प्रभाव ऐसे थे कि भारत(और शायद, ब्राज़ील) (और उनके वार्ताकार) के एलीट वर्ग जो ऐसे जीते और व्यवहार करते हैं मानो वह "अमीरों के क्लब" का हिस्सा बन चुके हैं और ग़रीब साउथ के पूरे कान्सैप्ट को ही ख़त्म करना चाहते हैं, और भारत के साउथ में रहने को एक 'बैड ड्रीम" की तरह देखते हैं, उनके लिए भी पोट्स्डैम में ऑफ़र हुई डील को स्वीकार करने के लिए इतना 'लचीला" होना मुश्किल था।

मगर कहानी यहीं ख़त्म नहीं होती है। हमने पहले भी देखा है कि ऐसे गतिरोध और अफलताओं के बाद अक्सर नए जोश के साथ बातचीत फिर से शुरू होती है। हमने यह भी देखा है कि बाद में वार्ताकार अपनी मर्ज़ी से ऐसे या इसके जैसे सौदों को स्वीकार कर लेते हैं और इसे भारतीय मीडिया को कोई बहुत बड़ी "जीत" बता कर पेश किया जाता है। उन्हीं प्रस्तावों के थोड़े संशोधित संस्करणों को आगे बढ़ाने की प्रक्रिया को अब जिनेवा में "बहुपक्षीय स्तर" पर आगे बढ़ाया जा रहा है, जिसे "अध्यक्ष द्वारा संचालित" वार्ता भी कहा जाता है!

इसीलिए ज़रूरी को जाता है कि चीज़ों को एक स्पष्ट परिपेक्ष में रखा जाए। विश्व व्यापार संगठन के एओए का विरोध करने के लिए, दक्षिण के लिए वैकल्पिक प्रतिमान के तत्वों की तरफ़ ध्यान दिलाने के लिए और राजनीतिक और विश्लेषणात्मक दोनों तरफ़ से प्रक्रिया का स्केच तैयार करने के लिए जो मौजूदा गतिरोध और ग़लत क़दमों से बाहर निकलने के रास्ते का नेतृत्व कर सकता है।

कुछ वक़्त पहले ऐसे ही एक दृष्टिकोण को बताने का प्रयास किया गया था। मुझे लगता है कि इस पर ध्यान आकर्षित करने की ज़रूरत है जैसा कि एक पेपर में लिखा गया था (मूल रूप से यहा कानकुन 2003/9 के बाद लिखा गया था और 2004 और 2005 में संशोधित किया गया था) नीचे पेश है :

दक्षिण से कृषि व्यापार पहल पर विचार।

यह व्यापक तौर पर माना गया है कि कानकुन में डबल्यूटीओ की मंत्रिस्तरीय बैठक के संदर्भ में जी-20 का उदय एक ऐतिहासिक विकास है। यह बात इस फ़ैसले की तसदीक़ करती है कि बड़ी कंपनियों द्वारा लगाए गए दबाव, कुछ सदस्यों के लगातार परित्याग के बावजूद यह इतना आगे तक आया है। हालांकि, यह मानना ग़लती होगी कि सिर्फ़ कानकुन की गति और ताक़त की वजह से यह एकजुटता आने वाले महीनों-सालों तक जारी रहेगी। इस एकजुटता को जारी रखने और मज़बूत बनाने के लिए कौन सी आम और ख़ास पहलों की ज़रूरत है?

सबसे पहले, साउथ के प्रमुख देशों की कृषि समझौतों पर बढ़ती एकजुटता को साउथ की पूरी एकजुटता के सिर्फ़ एक हिस्से के तौर पर देखने की ज़रूरत है। जी-20 को एक विशेष समझौते के संदर्भ में(आउर ऐसे प्रस्तावों को कम कर के नहीं आंकना चाहिए) इस पहलू को नज़रअंदाज़ करने के लिए प्रेरित करने के पीछे कूटनीतिक और टैक्टिकल विचार जो भी हों, मगर पोस्ट-सिएटल समय में उभरती स्थिति इतनी स्पष्ट है कि उसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। ज़ाहिर तौर, नॉर्थ अपनी क्षमता से पूरी तरह से वाक़िफ़ है, जैसा कि कैनकन प्रकरण के तुरंत बाद अमेरिका और ईयू दोनों की मज़बूत, तत्काल और झक्की प्रतिक्रियाओं से भी ज़ाहिर हो गया था। साउथ की बात करें, तो इस अनिवार्यता के विचार के तत्काल और मध्यम अवधि के निहितार्थ एक विशेष समझौते पर उठाए जाने वाले क़दम और किए जाने वाले उपायों के संदर्भ में देखने को मिलेंगे। साथ ही यह निहितार्थ पूरी समझौता प्रक्रिया के संदर्भ में भी होंगे।

आइये हम तत्काल और सबसे विशेष मुद्दे पर बात करते हैं, यानी कृषि पर समझौते। यह मुमकिन है कि जी-20 की एकता तनाव में आ जाएगी क्योंकि बारीकियों पर समझौता एग्रीमंट ऑन एग्रिकल्चर(एओए) के ढांचे के अंतर्गत होता है। जी-20 में कम से कम तीन अलग-अलग हैं। सबसे पहले, मुख्य रूप से निर्यात-उन्मुख देश (जो केर्न्स ग्रुप के सदस्य भी हैं) जिनकी मुख्य चिंता व्यापार की बड़ी कंपनियों के घरेलू समर्थन और निर्यात सब्सिडी प्रणाली है। दूसरे, भारत और चीन जैसे देश, और कुछ अन्य छोटे देश, जिनकी प्रमुख चिंता

उनके छोटे और सीमांत किसानों की विशाल आबादी को विश्व कृषि बाज़ार की ताक़तों की अनिश्चितताओं से बचाना है। और तीसरे, इजिप्ट जैसे देश जिनकी मुख्य चिंता आगे चल कर व्यापार की बड़ी कंपनियों से सब्सिडी पर सस्ते खाद्य आयात के ख़त्म हो जाने के बारे में है। ज़ाहिर तौर पर, बड़ी व्यापार कंपनियों द्वारा पहले और तीसते ग्रुप को संतुष्ट करने के लिए उठाए गए चालाक क़दमों की वजह से दूसरी ग्रुप अकेला हो जाएगा। और वहां भी, चीन अमेरिका के साथ अपने बढ़ते व्यापार फ़ायदे के साथ अत्यधिक सतर्क रवैया अपनाने के लिए मजबूर हो सकता है, इस बात का ख़याल रखते हुए कि समझौते के किसी एक क्षेत्र में मज़बूत स्थिति पर ज़ोर देने के चक्कर में पूरा समझौता ही मुश्किल में न पड़ जाए। दूसरे ग्रुप के अपने सामंजस्य को खोने की संभावना के न केवल भारत के लिए गंभीर प्रतिकूल प्रभाव हैं, क्योंकि इससे भारत प्री-जी20 वाली स्थिति में आ जाएगा, बल्कि पूरे साउथ पर भी इसका असर पड़ेगा क्योंकि इससे जी-20 की नीति पर सवाल उठेंगे।

इन हालात में, यह जी-20 की स्थापना करने वालों पर निर्भर करता है कि वह इस गठबंधन को तीनों अलग-अलग ग्रुप्स को एक साथ करने के लिए नीतियाँ बनाने में जुटाएँ। यह ज़ाहिर है कि एक तरफ़ पहला ग्रुप एओए पर सवाल नहीं उठा रहा है(बल्कि वास्तव में बड़ी कंपनियों की नीतियों और एओए के सैद्धान्तिक आधार के बीच की असंगतियों पर ही टिका हुआ है), बाक़ी दोनों ग्रुप्स के उद्देश्य एओए से ब-मुश्किल ही मेल खाते हुए दिखते हैं।

बुनियादी विरोधाभास को दूर करने के पहले क़दम के रूप में, जी-20 को यह मानना होगा कि एओए का सैद्धांतिक आधार और बड़ी कंपनियों पर हमला करने में उसकी उपयोगिता की वैधता चाहे कितनी भी हो, यह आधार आने वाले समय में नज़र नहीं आती है। अन्य शब्दों में कहें तो अमेरिका और ईयू में प्रचलित घरेलू समर्थन और सब्सिडी की व्यवस्था में कोई बड़ा और अहम बदलाव नहीं होगा(क्योंकि ज़ाहिर तौर पर एओए के काम करने के पिछले 8 साल में नहीं हुआ है), सिर्फ़ यह होगा उनकी आंतरिक वित्तीय बाधाओं के चलते उन्हें एक सीमा तक बदलाव करने होंगे। ज़ाहिर तौर पर, ब्राज़ील और केर्न्स ग्रुप के बाक़ी देश भी इसे अच्छे से समझते हैं मगर वह भी एओए को अपनाते हुए दिख रहे हैं, वह ऐसा एओए पर भरोसा करते हुए नहीं बल्कि बड़ी व्यापार कंपनियों की आलोचना के तौर पर कर रहे हैं। हालांकि इसके साथ ही, उनके कृषि निर्यात के लिए अमेरिकी और यूरोपीय बाज़ारों तक उनकी पहुँच के सवाल पर भी बात की जानी चाहिए जो उनकी अर्थव्यवस्था के लिए ज़्यादा ज़रूरी है। इसलिए, पहले ग्रुप के देशों के लिए एओए की तरफ़ वफ़ादारी का सवाल नहीं है बल्कि असली सवाल व्यापक बाज़ारों तक पहुँचना है जो उनके लिए काफ़ी अहम है। अगर यह तर्क सही है, तो जी-20 के पहले ग्रुप और दूसरे और तीसरे ग्रुप के बीच के विरोधाभास को एक साझी रणनीति तैयार करने के संदर्भ में समाधान के रूप में देखा जा सकता है।

अन्य दो ग्रुप के संबंध में, विश्व कृषि बाज़ार के साथ एकीकरण का प्रतिमान अपने आप में शुरू से ही संदिग्ध है। एओए न ही तीसरे ग्रुप के खाद्य आयात देशों की खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करता है, न ही दूसरे ग्रुप के देशों के कृषि संकट के सवाल के लिए कोई समाधान पेश करता है। और इस पर हैरान होने की ज़रूरत नहीं है। उरुग्वे राउंड में जिस एओए की कल्पना की गई थी, वह कुछ टेम्परेट ज़ोन, मिडिल-इनकम, कृषि निर्यात देशों को छोड़ कर साउथ में होने वाली पीजैंट(किसान) खेती के लिए अजनबी है। एओए को बनाने की वजह थी- एक तरफ़ तो, नॉर्थ अमेरिका में कृषि व्यवसायों के लिए ईयू, जापान, कोरिया, भारत, चीन के बाज़ारों को लिए, और दूसरी तरफ़, विश्व कृषि निर्यात बाज़ारों में ट्रांस-अटलांटिक दुश्मनी की व्यवस्था में एक समानता लाने के लिए।

अगर इस स्कीम को सफल होने दिया गया, तो यह सिर्फ़ साउथ के किसानों को कंगाल करेगा, यहाँ खाद्य सुरक्षा को कमज़ोर करेगा और आख़िरकार थर्ड वर्ल्ड की राजनीति को अस्थिर करेगा। यह सोचना बेमानी होगा(जैसा कि भारत सरकार सोचती है) कि भारत को कृषि आयात पर एक "सुविधापूर्ण" टैरिफ़ फ़िक्स करने दिया जाएगा। यह सोचना और भी ज़्यादा बेमानी है(जैसी भारत सरकार को वास्तव में उम्मीद है) कि कृषि क्षेत्र का निगमीकरण करने और निर्यात के बढ़े अवसरों से भारत में लंबे समय से रुका हुआ कृषि बदलाव हो सकता है। इससे किसानों का बड़े स्तर पर विस्थापन होगा(रोज़गार के वैकल्पिक अवसर दिये बिना) और लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था के अस्थिर होने का ख़तरा भी बढ़ेगा। सरल शब्दों में कहें तो भारतीय कृषि के सवाल का कोई समाधान एओए में नहीं है। और इसीलिए भारत और ऐसे कई विकासशील देशों के लिए यह सबसे ज़रूरी है कि वह अपनी कृषि अर्थव्यवस्था को एओए से अलग करने के लिए क्वॉटिटेटिव रिस्ट्रिक्शन(क्यूआर) को इस्तेमाल करने के अधिकार पर ज़ोर दें। सिर्फ़ ऐसा करने से ही ऐसे देशों को कृषि के सवाल के समाधान के लिए उपयुक्त रणनीति तलाशने और काम करने के लिए एक स्थान प्रदान करेगा।

क्यूआर के इस्तेमाल का दावा करने और उसे सही ठहराने के दौरान, उन्हें यह नियो-क्लासिकल किताबी बात सुनने को मिल सकती है कि क्यूआर जीएटीटी/डबल्यूटीओ के समझौतों पर दृष्टिकोण के साथ असंगत हैं। डबल्यूटीओ के अहम हिस्से एग्रीमंट ऑन टेक्सटाइल्स एंड क्लोथिंग पर एन नज़र डालने से; एओए से पहले टैरिफ़िकेशन को देखते हुए; और अंत में जीएटीटी के अनुच्छेद 18 के मौजूदा प्रावधानों को देखने से ही यह समझ आ जाएगा कि क्यूआर पूरी तरह से सिस्टम का हिस्सा हैं। इसके अलावा, बड़ी कंपनियों ने एओए

में अपने लिए क्यूआर का ही एक संस्करण टैरिफ़ रेट कोटा(टीआरक्यू) रखा है जहाँ एक निश्चित मात्रा के आयात कम टैरिफ़ रेट पर हो सकते हैं, और उसके बाद आयात सिर्फ़ प्रोहिबिटिव(निषेधात्मक) टैरिफ़ पर हो सकते हैं। प्रोहिबिटिव टैरिफ़ एक व्यवस्था है जो रेंटियर(निधिय) इनकम को बढ़ावा देती है और टैरिफ़ के मूल्य आधारित साधन की कथित प्रभावकारिता को बड़े स्तर पर ख़त्म कर देती है।

अगर विकसित देशों में पुराने टेक्सटाइल उद्योग, जो कि उनकी अर्थव्यवस्था का बेहद छोटा हिस्सा है, 6 दशक तक क्यूआर लागू होने को सही थारा सकता है; अगर कृषि दिग्गजों द्वारा जीएटीटी के पूरे कार्यकाल और उसके बाद भी क्यूआर का सहारा लिया जा सकता है; अगर विकासशील देशों की बाहरी आर्थिक स्थिति की सुरक्षा के लिए क्यूआर का सहारा लिया जा सकता है, तो विकासशील दुनिया में लाखों किसानों की आजीविका की रक्षा करने के लिए क्यूआर का सहारा लेने की ज़रूरत को सही ठहराने के लिए और ज़्यादा उचित तर्क दिये जाने चाहिए।

हालांकि क्यूआर पर ज़ोर देने के इस कदम का जी-20 देशों के पहले ग्रुप वाले देशों द्वारा विरोध नहीं किया जाएगा, लेकिन यह उन्हें अपने कृषि निर्यात के लिए बाज़ारों के विस्तार की संभावना नहीं देता है। इस आवश्यकता को अंतर-विकासशील देशों के व्यापार उदारीकरण की कलिब्रेटेड व्यवस्था के अंतर्गत ऐसे निर्यात तक बेहतर पहुँच पर समझौते करके पूरा किया जा सकता है। इन देशों में अनुचित प्रतिस्पर्धा का ख़तरा नहीं है और जहाँ कृषि बदलाव के लिए राष्ट्रीय रणनीतियाँ तैयार करने के लिए ज़रूरी आज़ादी को सुनिश्चित करने के लिए उचित सुरक्षा उपाय भी किए जा सकते हैं। इसी तरह से, खाद्य आयात पर निर्भर देशों की चिंताओं को दूर करने के लिए बहुपक्षीय, क्षेत्रीय या द्विपक्षीय खाद्य सुरक्षा उपायों, जिसमें डाइरैक्ट ट्रेड उपाय भी शामिल हों जैसे सस्ती क़ीमतों पर दीर्घकालिक अनुबंध; को अंतर-विकासशील देशों के व्यापार और आर्थिक सहयोग से जोड़ कर परिकल्पित किया जा सकता है।

यह बात साफ़ है कि इस तरह का प्रतिमान न केवल एओए से पूरी तरह अलग है, बल्कि यह इस सैद्धांतिक आधार पर भी सवाल खड़े करता है। इसका उद्देश्य कार्य साउथ की मौजूदा ज़रूरतों को देखते हुए तैयार किया गया है।

साउथ की बढ़ती एकजुटता को जारी रखने और मज़बूत करने के लिए, यह ज़ाहिर है कि ब्राज़ील, भारत, चीन और दक्षिण अफ़्रीका को एक साथ रह कर साझी रणनीति बनानी होगी और अदूरदर्शी, द्विपक्षीय सौदे करने के प्रलोभन से बचना होगा। इस संदर्भ में यह आवश्यक है कि ऊपर बताए गए कृषि के बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए तीनों विविध ग्रुप की एक साझी कलात्मक रणनीति तैयार की जाए और इसे विकासशील देशों के बीच अधिक से अधिक व्यापार और आर्थिक सहयोग का प्रतीक बनाया जाए। इसके लिए जी-20 पर ऐसी रणनीति के ब्यौरों पर काम करने के लिए एक अंतर-सरकारी ग्रुप बनाने के लिए दबाव डालना चाहिए/या उसे मनाना चाहिए। इसके साथ ही, कृषि व्यापार पर साउथ की वैकल्पिक रणनीति का ख़ाका तैयार करने के लिए एक ग़ैर-सरकारी पहल की भी शुरूआत होनी चाहिए।

जब उरुग्वे राउंड के समझौतों में बहुराष्ट्रीय व्यापार प्रणाली को शिफ़्ट करने की धमकी दी जा रही थी, तब विकासशील देशों ने इस ख़तरे को समझते हुए इसका मुक़ाबला करने के लिए एक दूरगामी और ज़रूरी राजनीतिक पहल की थी। इस क़दम के अगुआ भारत, ब्राज़ील, युगोस्लाविया और इजिप्ट थे। इसीलिए 1985 में नई दिल्ली में ग्रुप 77 ने अपनी मंत्रिस्तरीय बैठक में विकासशील देशों के बीच ग्लोबल सिस्टम ऑफ़ ट्रेड प्रेफ़रेंसिस(जीएसटीपी) समझौते को लॉंच किया था। इसके बाद 1986 में ब्राज़ीलिया मंत्रिस्तरीय बैठक

हुई जहाँ इस पहल को आगे बढ़ाया गया। और आख़िरकार, अप्रैल 1988 में बेलग्रेड मंत्रिस्तरीय बैठक हुई, जहाँ एक अंतर्राष्ट्रीय क़ानूनी समझौता पूरा हुआ, जिसने इतिहास में पहली बार विकासशील देशों को अपने पारस्परिक व्यापार और आर्थिक सहयोग को मज़बूत करने के लिए एक व्यापक बहुपक्षीय ढांचा प्रदान किया। विकासशील देशों की तरफ़ से यह उरुग्वे दौर के हमले का सामूहिक प्रतिरोध का संकेत देती हुई सामयिक, रणनीतिक प्रतिक्रिया थी। मगर दुर्भाग्य से, उसके बाद के सिर्फ़ 2 सालों में, शक्तिशाली औद्योगिक देशों, विशेष रूप से अमेरिका और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों जैसे आईएमएफ और विश्व बैंक के दबाव ले आगे प्रमुख विकासशील देशों की राजनीतिक इच्छाशक्ति कमज़ोर पड़ गई। विकासशील देशों के का पारस्परिक व्यापार और आर्थिक सहयोग के लिए बनाए गए सेटअप को भुला दिया गया। और तब से ही जीएसटीपी समझौता वापस ले लिया गया।

इस इतिहास को मौजूदा संदर्भ में देखने की ज़रूरत है। एक तरफ़ यह उन ख़तरों की बात करता है जिसने हमेशा से साझी आत्मनिर्भरता की नीतियों को को रोकने का काम किया है। मगर इससे ज़्यादा ज़रूरी हमें यह पता चलता है कि विकासशील देशों के बीच आपसी सहयोग का एक वैकल्पिक नहीं मगर पैरलल बहुपक्षीय ढांचा पहले से मौजूद है। ऊपर जो जी-20 की सभी प्रवृत्तियों के हित में काम करने वाली रणनीति के तौर पर विशिष्ट उपाय और मॉडल बताए गए हैं, वह सभी जीएसटीपी के ढांचे में मौजूद हैं। जबकि एओए का प्रचलित प्रतिमान थर्ड वर्ल्ड के 300 करोड़ किसानों की आजीविका पर ख़तरा बना हुआ है, तब साझी आत्मनिर्भरता का लक्ष्य और भी ज़्यादा ज़रूरी हो जाता है। और जी-20 समूह के प्रमुख देशों की यह ज़िम्मेदारी है कि वह इस लक्ष्य को दोबारा ज़िंदा करें और इसे लागू करें।

जो साउथ की साझी आत्मनिर्भरता के वैकल्पिक लक्ष्य के लिए प्रतिबद्ध हैं, उन्हें दांव पर लगे मुद्दों के बारे में जागरूकता पैदा करनी चाहिए, उस पहल पर बात करनी चाहिए जो संभव और वांछनीय हैं और संकटग्रस्त किसानों को लामबंद करना चाहिए ताकि समझौतों में शामिल सरकारों पर साउथ के किसानों के हितों की रक्षा करने और उन्हें आगे बढ़ाने की रणनीतियों और रूखों को अपनाने के लिए दबाव डाला जा सके। सरकारों को नॉर्थ के बड़े कृषि व्यापारियों या साउथ में उनके एजेंटों की नहीं बल्कि साउथ के किसानों के हितों की बात करने की ज़रूरत है।

3. व्यापार, निवेश और टेक्नोलॉजी पर वैश्विक व्यवस्था के लिए एक नया प्रतिमान

एस.पी. शुक्ला

20.5.2020

1980 के दशक में जीएटीटी के तहत बनी वैश्विक व्यापार व्यवस्था के अस्तित्व पर एक गंभीर ख़तरा मंडरा रहा था। लेस्टर थरो ने ऐलान कर दिया था, "जीएटीटी डूब गया है।"

इस ख़तरे को जीएटीटी के नरम ढांचे को एक महत्वाकांक्षी, लगभग ओपन एंडेड वैश्विक व्यवस्था में बदल कर बड़ी कंपनियों ने टाल दिया था। इसने इसके अधिकार क्षेत्र को उत्पाद के सीमा पार व्यापार से कहीं आगे बढ़ा दिया और कृषि व्यापार की कुछ प्रतिबंधात्मक विशेषताओं को भी लचर बना दिया।

सेवाओं में व्यापार के नाम पर, इसने वित्तीय और अन्य व्यावसायिक सेवाओं के महत्वपूर्ण क्षेत्र को भी खोल दिया था। यह व्यापर संबंधी निवेश के मुद्दों को नियंत्रित करने वाले एक अनुशासन के नाम पर विदेशों में

निवेश संबंधी कई मुद्दों को लेकर आया। सबसे ज़रूरी बात यह कि इसने इंटेक्चुअल प्रॉपर्टी अधिकारों की सुरक्षा पर एक अपक्षाएँ रखने वाली व्यवस्था को स्थापित किया, जबकि यह मुद्दा बहुत छोटे स्तर पर व्यापार से संबंधित था।

और एक समाप्त होते जीएटीटी का डबल्यूटीओ के रूप में पुनरुत्थान की घटना का इतिहास में 'एक निर्णायक क्षण' के रूप में जश्न मनाया गया।

यह सब इसलिए मुमकिन हुआ था क्योंकि इस प्रस्तावित व्यवस्था का मुख्य लाभ ओईसीडी देशों से संचालित एमएनसी को मिलने की उम्मीद थी, चाहे वह खाद्यान्न, फ़र्टिलाइज़र और आनुवंशिक रूप से संशोधित बीज की वैश्विक कंपनियाँ हों, बिग फ़ार्मा हों या वित्तीय दिग्गज हों। इसकी क़ीमत बड़े स्तर पर विकासशील देशों को चुकानी पड़ी थी, जिन्हें आर्थिक प्रबंधन और विकास रणनीति के अहम क्षेत्रों में नीतिगत स्वायत्तता को त्यागना पड़ा था।

वह महत्वाकांक्षी प्रणाली अपने विशाल जनादेश के बोझ तले दब रही थी, लेकिन साथ ही मंत्रिस्तरीय बैठकों में अपने उत्तराधिकार के साथ-साथ आगे भी बढ़ रही थी, कुछ बैठकें विवाद पर ख़त्म हो रही थीं, कुछ समस्याओं को उसी के आधिकारिक शासन को सौंप देती थीं, और कुछ में अनिच्छुक विकासशील देशों पर नए अनुशासन थोपे जा रहे थे।

यह सब तक तक राज़ी-ख़ुशी चलता रहा जब इस व्यवस्था ने "तीन ज़ख्म" झेले। 2008 का वैश्विक आर्थिक संकट, तेज़ी से बदता अमेरिका-चीन का व्यापार टकराव; और कोविड-19।

इस संस्थान के तौर पर इस व्यवस्था के द्वारा झेले गए संकट को इसके डिसप्यूट सेटलमेंट सिस्टम, इसके कोहिनूर की निर्बलता से समझा जा सकता। कहा जाता है कि इसका मक़सद इसके संचालन तंत्र में सुसंगतता, पारदर्शिता और स्थिरता लाना था। और अब इसके चीफ़ एग्ज़ीक्यूटिव का तय समय से पहले बाहर हो जाना इस संकट की गहराई को सामने लाता है।

अब लग रहा है कि डबल्यूटीओ भी उसी स्थिति की तरफ़ जा रहा है जिसकी भविष्यवाणी 80 के दशक में लेस्टर थुरो ने जीएटीटी के बारे में की थी।

अब बड़ी कंपनियों के पास इस संकट से निकलने के लिए कोई आसान और अपने फ़ायदे वाला समाधान नहीं बचा है। तब इस संकट की कुछ वजह बढ़ी कंपनियों के बीच का आपसी तनाव और कुछ वजह ओईसीडी देशों के ऑपरेटरों और एजेंटों को बड़े आर्थिक लाभ देने के लिए नए क्षेत्रों को शामिल करने में व्यवस्था की रुकावट थी। इसका हल सिर्फ़ नए क्षेत्रों में अधिकार क्षेत्र को बढ़ा कर और पुराने अनुशासनों में बदलाव करके किया जा सकता है।

मौजूदा चुनौती पूरी तरह से अलग है।

2008 के वित्तीय संकट ने वैश्विक बाज़ारों के परिष्कृत, ग़ैर-पारदर्शी और ग़ैर-जवाबदेह चलन के अंदर छुपी अनिश्चितता को सामने लाने का काम किया था। इसने वैश्विक अर्थव्यवस्था को धीमा कर दिया था जिसके प्रभाव आज भी देखने को मिलते हैं।

व्यापार और वित्त और टेक्नोलॉजी की वैश्विक प्रणाली के इर्दगिर्द काम कर रहे चीन के उदय ने वैश्विक परिदृश्य को पूरी तरह से बदल दिया है। उपनिवेशवाद में उत्पन्न और विश्व व्यापार संगठन में समकालीन रूप से सन्निहित पश्चिमी शक्तियों की सर्वोच्चता को चुनौती दी गई है। अमेरिका की आक्रामक प्रतिक्रिया सिर्फ़सिर्फ़ मौजूदा "आदेश" के ख़तरे को दर्शाती है। वैश्विक समुदाय ने अभी तक चीन को बहुपक्षीय व्यवस्था को "को बचाने" की भूमिका पर भरोसा नहीं किया है। चीन की एक समानांतर, सरल पहल, जो पूरी तरह से अलगहै, "रोड एंड बेल्ट इनिशिएटिव" को बहुत बेहतर प्रतिक्रिया मिली है, लेकिन इसके दीर्घकालिक निहितार्थों को देखना अभी बाक़ी है, इस पर मौजूदा मौजूदा बहुपक्षीय संस्थान और आर्थिक एजेंट और ऑपरेटरों और देशों द्वारा बहुत कम विचार किया गया और अवशोषित किया गया है। लेकिन इस पर बाद में बात करेंगे।

कोविड-19 की वजह स्थिति बुनियादी तौर पर बदल गई है। कोविड ने अंतर्राष्ट्रीय विचार विमर्श की बुनियाद को हिला कर रख दिया है, चाहे वह व्यापार हो, ट्रैवल हो या निवेश।

निर्माण और व्यापार में सुचारू रूप से चल रही सप्लाई चेन बाधित हो गई है। दुनिया भर में ख़ास तौर पर बड़े या जादा विकसित देशों की सरकारों की सोच में बाज़ार-सर्वोच्चता के प्रतिमान को स्वीकार करने से और उसपर भरोसा करने से से लेकर "औद्योगिक नीति", "रणनीतिक स्वायत्तता", "आत्म-निर्भरता" और यहाँ तक कि "आर्थिक और रणनीतिक आज़ादी" की ज़रूरत को पहचानने या इसपर विचार करने की ओर एक प्रत्यक्ष बदलाव देखा गया है।

अंतर्राष्ट्रीय ट्रैवल के बंद होने से टूरिज़म और व्यापार और संभवतः विदेशी निवेश प्रस्तावों को भी भारी नुकसान झेलना पड़ा है।

जबकि वैश्विक वित्तीय बाज़ार एक हद तक संकट की गहराई को बता रहे हैं, विदेशी निवेश पर मध्यम अवधि के प्रभाव अभी पूरी तरह से सामने नहीं आए हैं, हालांकि यह स्पष्ट है कि वे भी नकारात्मक ही होंगे।

कोई भी यह उम्मीद करेगा कि कोविड 19 की वजह से फैले वैश्विक सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट से अनुसंधान प्रयोगशालाओं, फ़ार्मा उद्योग और सार्वजनिक स्वास्थ्य विशेषज्ञों और चिकित्सकों के बीच आर एंड डी में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग बढ़ना चाहिए, मगर हमने अमेरिका के रवैये को विपरीत ही पाया है। अमेरिका के वैक्सीन के अधिकार पर ज़ोर दिया है और यहाँ तक दूसरे देशों के लिए रखी पीपीई को भी हथियाने की कोशिश की है।

कोविड-19 ने सीधे तौर पर पर्यावरणीय संकट को भी अप्रत्यक्ष तौर पर दर्शाया है। पशु उत्पादों के "वेट मार्केट्स" में प्रचलित पर्यावरण विरोधी प्रथाओं को हतोत्साहित करने और रोकने के लिए आवश्यक उपायों को लागू करने में विफल रहने के आरोप में चीन को सनकीर्ण राजनीतिक विचार चीन को बलि का बकरा बनाया जा रहा है। मगर कोविड-19 और उससे पहले आये सार्स और ईबोला की वजह से यही असल मुद्दे सामने आये हैं पृथ्वी तेज़ी से विकास करने के चक्कर में तेज़ी से अपने अंत की ओर बढ़ रही है।

ग्लोबल वॉर्मिंग संकट पर अंतर्राष्ट्रीय विचार-विमर्श के प्रत्यक्ष परिणाम नहीं निकले हैं। इसकी मुख्य वजह यह है कि यह समाधान मौजूदा आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था की सीमाओं और पूर्वाग्रहों के तहत खोजे जाते हैं। यह ढिलाई जब तक बरती जाएगा है, महामारी, भयंकर सूखा और अकाल, जल-आधारित संघर्ष के अप्रत्याशित परिणामों का ख़तरा उतने ही ज़्यादा होंगे। कोविड-19 पर्यावरण पर आसन्न आपदा की ओर इशारा करता है।

व्यापार, निवेश और टेक्नोलॉजी की मौजूदा बहुपक्षीय व्यवस्था के सामने आई ख़तरनाक और दूरगामी चुनौतियों को दूर करने के लिए नई सोच और नए दृष्टिकोण की ज़रूरत है।

इस दिशा में नीचे कुछ विचारों का ज़िक्र किया गया है।

सबसे पहले यह बात साफ़ है कि मौजूदा प्रणाली में कोई बदलाव या वृद्धिशील उत्परिवर्तन से कोई फ़ायदा नहीं होगा। हम एक अभूतपूर्व संकट का सामना कर रहे हैं जिसके लिए हमें नए दृष्टिकोण की ज़रूरत है।

अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक विचार-विमर्श का मौजूदा संस्थागत मॉडल बाज़ार सर्वोच्चता, आर्थिक एजेंटों के बीच प्रतिस्पर्धा, पैमाने की अर्थव्यवस्थाएं, वस्तु, सेवाओं, पूंजी का मुक्त प्रवाह और दुनिया भर में आर्थिक गतिविधियों का प्रगतिशील एकीकरण पर आधारित है, एमएनसी एजेंट बन कर इसे पेश कर रही हैं।

हालिया इतिहास ने इसकी अपर्याप्तता के साथ-साथ इसके अप्रभावी व्यवहार को भी सामने ला दिया है। समस्या की व्यापकता और इसके प्लेनेटरी(यह "वैश्विक"/ ग्लोबल से अलग है, जिसका इस्तेमाल मुख्य रूप से अलग-अलग भू-राजनीतिक(जियो-पॉलिटिकल) संस्थाओं में बाज़ार के निर्बाध प्रसार को दिखाने के लिए किया जाता है) चरित्र को ध्यान में रखते हुए, हमें अपने दृष्टिकोण को एक ग़ैर-बाज़ार प्रतिमान में पेश करने की ज़रूरत है। इस तरह के दृष्टिकोण सिद्धांत क्या होंगे?

सबसे महत्वपूर्ण तत्वों में निम्नलिखित की मान्यता होगी :

A. मानवता को राष्ट्रवाद के मुकाबले प्राथमिकता;

B. प्लेनेट(जियोलॉजिकल-इकोलॉजिकल एंटिटी) को ग्लोब(राजनीतिक सीमाओं के पास फैले बाज़ार) के मुकाबले प्राथमिकता; और

C. सहयोग और सह-साझाकरण को बाज़ार और एजेंटों के बीच प्रतिस्पर्धा के मुकाबले प्राथमिकता

उपनिवेशीकरण के इतिहास ने "बाज़ार" तक "मुफ़्त पहुँच" के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के मॉडल को आकार दिया; यह रास्ते सभी उपनिवेशवादियों के लिए खुले थे और ज़ाहिर तौर और संबंधित सेना की शक्तियों के ज़रिये "आज़ादी" को परिभाषित किया गया। औपनिवेशीकरण ने मूल रूप से तस्वीर को नहीं बदला। न ही परिवहन के साधनों में क्रांति आई। भूतपूर्व उपनिवेशवादियों का आधिपत्य जारी रहा, मगर राजनीतिक अर्थों में कुछ बदलाव आये और मौजूदा कॉलोनियों में उभरते आर्थिक एजेंटों के लिए कुछ सह-विकल्प आये, बशर्ते वे प्रचलित बाज़ार प्रणाली और उसके संचालन की मूल बातों पर सवाल न उठाएं।

A. उस मॉडल को हमेशा के लिए रद्द करने की ज़रूरत है।

B. पृथ्वी के अस्तित्व की रक्षा और उसकी इकोलॉजी का पुनरुत्थान;

C. मानवता की बुनियादी ज़रूरतों की पूर्ति और भौतिक और सांस्कृतिक दोनों रूप से इसका प्रगतिशील संवर्धन; और

ऊपर बताए गए दोनों लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के लिए साइंस और टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल।

यह अंतरराष्ट्रीय बातचीत के लिए किसी भी भविष्य के मॉडल की नींव का निर्माण करना चाहिए, विशेष रूप से व्यापार, निवेश और टेक्नोलॉजी के दायरे में आने वाली आर्थिक गतिविधियों के संबंध में इसे आने वाले समय मेंअंतर्राष्ट्रीय विचार-विमर्श शुरू करने के लिए बुनियाद मानना चाहिए।

इस तरह का दृष्टिकोण विकसित और विकासशील देशों; उत्तर और दक्षिण; मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था और नियोजित अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में मौजूदा टैक्सोनॉमी पर काम करता रहेगा।

यह एक सहकारी और पारस्परिक रूप से स्वीकार्य टेम्पलेट के ज़रिये व्यापार और निवेश के लिए सभी बाज़ारों तक सभी के लिए मुफ्त प्रतिस्पर्धी पहुंच को भी प्रतिस्थापित करेगा, जिसपर दो देशों के बीच द्विपक्षीय रूप से या सभी देशों के बीच बहुपक्षीय रूप से समझौता किया जा सकता है।

जहाँ तक साइन्स और टेक्नोलॉजी की बात है, तो यह आदान-प्रदान मुख्य रूप से ज्ञान की खोज को बढ़ावा देने और नए प्रतिमान के मौलिक उद्देश्यों के लिए इसका उपयोग करने के विचार पर तैयार किए गए टेम्पलेट के ज़रिये शासित होंगे।

इसका मतलब यह है कि इस संबंध में व्यक्तिगत/कॉर्पोरेट योगदान की मान्यता और इसका ईनाम पूरी तरह कार्यात्मक होगा, यानी, वे वहीं तक सीमित रहेंगे, जब तक वे टेम्पलेट के मूल उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

इस तरह के प्रतिमान में, व्यापार आदान-प्रदान सरप्लस और विविधता में होगा, जैसा कि वाणिज्यिक और औद्योगिक पूंजीवाद से पहले के दौर में काफ़ी हद तक हुआ था। तुलनात्मक लाभ की गणना के बजाय पूरकता व्यापार एक्सचेंजों का निर्धारण करेगी। इसके अलावा, वास्तविक सामाजिक लागत, जिसमें लंबी दूरी के परिवहन की लागत और इसके प्रदूषणकारी दुष्प्रभाव भी शामिल हैं, व्यापार एक्सचेंजों के निर्धारण में नज़र आएंगे। इसका मतलब यह भी है कि इसमें सेवाओं के आदान-प्रदान और निवेश के प्रवाह पर व्यापार प्रतिमान को थोपने की कोई जगह नहीं होगी, जैसा कि विश्व व्यापार संगठन के अनुशासन के तहत करने की कोशिश की जा रही है।

"बाज़ारों"(जो जनता और उनके जीवन और आजीविका की के सिद्धांत से विभाजित है जिसमें केवल उपभोक्ताशामिल हैं) के प्रतिस्पर्धी आधार पर "फ़्री एंड इक्वल" पहुँच के कॉलोनियल मॉडल के ख़त्म होने, और इसकी जगह पूरकता और सहयोग आधारित मॉडल के लाने के साथ ही रोड एंड बेल्ट इनिशिएटिव की महत्वपूर्णता स्पष्ट हो जाती है। ऐसी पहल जहां पारस्परिक रूप से लाभकारी सहयोग के आधार पर भौगोलिक संबंधों को बढ़ावा दिया जाता है, वहाँ व्यापार और अन्य आदान-प्रदान आपसी ज़रूरतों और क्षमताओं के आधार पर कभी इसमें शामिल 2 के बीच, तो कभी-कभी क्षेत्र के कई देशों को शामिल कर के क्षेत्रीय आधार पर होंगे। यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि ऐसे आदान-प्रदान से परिवहन, वित्तीय और सामाजिक ख़र्चे कम होंगे।

चूंकि इस तरह के आदान-प्रदान वास्तविक अंतर-निर्भरता और/या आपसी सहयोग में निहित हैं, इसलिए "वैश्विक" बाज़ार द्वारा कृत्रिम रूप से अस्तित्व में लाये गए सप्लाई चेन के विघटन का जोखिम, न के बराबर होगा। इसी तरह, ऐसे एक्सचेंजों में प्रीडेटरी प्राइसिंग की भी कोई गुंजाइश नहीं होगी।

न ही इसमें तथाकथित तुलनात्मक व्यापार लाभ के माध्यम से ग़ैर-औद्योगीकरण या व्यापक विदेशी निवेश के माध्यम से सत्ता संबंधों के औपनिवेशिक पैटर्न को फिर से शुरू करने का कोई डर होगा नहीं होगा।

साइन्स एंड टेक्नोलॉजी में आदान-प्रदान के लिए नया प्रतिमान ज्ञान में निजी संपत्ति के बेतुके विचार के साथ, पूरी दुनिया में प्रभावित आबादी के लिए नए आविष्कारों, उपचारों और टीकों तक त्वरित पहुंच की सुविधा प्रदान करेगा, इसके ज़रिये यह भविष्य में आने वाली महामारियों को बहुत कम विनाशकारी बना देगा। वास्तव में, इंसानी लालच के लिए प्रकृति को झुकाने के लिए निरंतर प्रयास करने के लिए अपने प्रोमेथियन अहंकार के साथ-साथ निकालने वाले विकास के मॉडल का परित्याग, भविष्य में महामारियों के संकट को पूरी तरह से समाप्त न भी कर पाये तो काफ़ी हद तक कम ज़रूर कर देगा।

सरल शब्दों में कहें तो मानवता को कोरोना वायरस के रूप में एक ख़तरे की घंटी सुनाई दी है। इसने व्यापार, निवेश और टेक्नोलॉजी की वैश्विक व्यवस्था के पुरानेपन को पहली बार उजागर किया है। दो विश्व युद्ध और डिप्रेशन की त्रासदी भी सदियों से विकसित हुए प्रतिमान की घातक संभावनाओं को उजागर करने में कामयाब नहीं हुई थीं। मानवता के एक अदृश्य लेकिन हमेशा मौजूद रहने वाले, अपराजेय दुश्मन के कारण महामारी द्वारा इस काम नाटकीय रूप से पूरा किया जा रहा है।

हमें इतिहास को जवाब देना होगा, कि क्या हमने ख़तरे की घंटी को सुनते हुए अपने साझे बचाव और सुधार के लिए संस्थानों को अनुकूल बनाया था, या क्या हम सिर्फ़ बहाने बनाते रहे और अपनी झाड़ियों में छुप कर बचने के नाकाम प्रयास करते हुए सारे पेड़ों को जलते हुए देखते रहे थे।

4. सप्लीमेंट लेख : व्यापार,निवेश और टेक्नोलॉजी पर वैश्विक व्यवस्था के लिए एक नया प्रतिमान

एस.पी. शुक्ला*

25.4.2022

इंसानों के के बेहतर वर्ग की इस बात से राहत है कि महामारी को नियंत्रित कर लिया गया है, हालांकि जिस तरीक़े से यह नियंत्रण किया गया, वह तरीक़ा बेढब, एकतरफ़ा और मौजूदा वैश्विक अव्यवस्था की अंतर्निहित असमानता को दर्शाने वाला था।

मगर इस व्यवस्था का फ़ायदा पाने वालों के लिए यह राहत ज़्यादा दिन नहीं रह पाई। महामारी के सिर्फ़ 2 साल के अंदर भड़की यूक्रेन जंग ने "*वैश्विक व्यवस्था" की बुनियाद को महामारी के मुकाबले और ज़्यादा नाटकीय ढंग से हिला दिया है।

* यह लेख एस.पी. शुक्ला के पछिले लेख .... का सप्लीमेंट/पूरक है जो द सटिज़िन में प्रकाशति हुआ था। इस लेख में उन्होंने व्यापार, नविश और टेक्नोलॉजी पर वैश्वकि व्यवस्था के तत्वों पर बात की है। कोवडि-19 की वजह से कांप उठी “वैश्वकि व्यवस्था” को देखते हुए इस लेख को लखिा गया था।

अब यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि महत्वाकांक्षी और लालची वैश्विक व्यवस्था, जिसका हॉलमार्क अमेरिकी डॉलर की सर्वोच्चता विदेशों में वित्त पूंजी की सुचारू आवाजाही रहा है, उसको प्रभावी ढंग से चुनौती दी गई है। इसका वैश्विक डोमेन को रूस पर लगाए गए प्रतिबंधों और उसपर रूस की चालाक प्रतिक्रिया से खंडित हो गया है। रूस की प्रतिक्रिया अल्पकालिक असफलताओं को झेलने की तैयारी में उतनी ही निहित है जितनी वह अपने पास ऊर्जा, भोजन और धातुओं के सरप्लस में है

चीन, चुनौतीपूर्ण वैश्विक व्यवस्था में देर से शामिल हुए है, वह अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर हावी होने, अत्याधुनिक तकनीकों का विकास करने और विदेशों में अपने निवेश के विस्तार के लिए एक नया रास्ता तैयार करने में कामयाब रहा है। यूएस डॉलर के संबंध में, चीनी युआन ने अपने लिए परस्पर निर्भरता का एक नया, सहजीवी संबंध बनाया है जिसने वैश्विक वित्तीय व्यवस्था में चीन की नीतिगत स्वायत्तता की को भी बढ़ा दिया है। चीन की रूस के साथ "बिना सीमा की दोस्ती" को देखते हुए, 1990 के दशक में अस्तित्व में आई प्रचलित वैश्विक व्यवस्था के डोमेन का टूटना अब साफ़ हो गया है।

यूक्रेन जंग का अंत जो भी हो, इसका टूटना तो लगभग तय है।

इस व्यवस्था के अन्य ग़ैर-यूरोपीय सदस्य पहले से ही ऐसी खंडित व्यवस्था की अंतर्निहित असुरक्षा को महसूस कर रहे हैं और अपनी स्थिति को जैसे भी मुमकिन हो, मज़बूत करने के तरीक़े तलाश रहे हैं और अपने विकल्पों को खुला रखने की कोशिश कर रहे हैं। भारत की सूक्ष्म स्थिति इसका एक उदाहरण है। साउथ के कई अन्य देशों, ख़ास तौर पर कुछ महत्वपूर्ण तेल निर्यातक देशों से भी यह अपेक्षा करना बेमानी नहीं होगा कि वे भी इस तरह का रवैया अपना लें। अमेरिका द्वारा रूस को निशाना बनाने के लिए लाए गए प्रस्तावों से बड़ी संख्या में परहेज़ किया जाना इसी बात का संकेत है।

"लोकतंत्र और मुक्त दुनिया" बनाम "निरंकुशता और कुलीन वर्गों" के बारे में चाहे जो भी कहा जाए, राष्ट्रीय आत्म-हित साउथ के देशों को मौजूदा वैश्विक व्यवस्था के पतन में योगदान देने के लिए ज़रूर मजबूर करेगा। इस प्रक्रिया में आर्थिक बल, भूगोल और जनसांख्यिकी के साथ साथ आज़ाद रास्ते को अपनाने के इतिहास की वजह से भारत की भूमिका अहम रहेगी।

भारत सरकार के लिए यह 'मैटर ऑफ़ चॉइस' नहीं होगा। आने वाली स्थिति ही भारत की कार्रवाई को नियंत्रित करेगी। आइये इसे समझते हैं।

II

भारत के सामने कृषि संकट सबसे बड़ी चुनौती है। इस संकट की कई परतें और पहलू हैं। इसका सबसे बड़ा पहलू ग्लोबलाइज़ेशन का रास्ता है जो डब्ल्यूटीओ द्वारा एओए की शक्ल में भारत पर थोपा जा रहा है। इस रास्ते की असंभवता को समझने के लिए भारत सरकार द्वारा झेली जा रही दुविधा को देखा जा सकता है। सरकार फंसी हुई है। वह न्यूनतम समर्थन मूल्य(एमएसपी) पर गारंटी नहीं दे सकती, जो समग्र रूप से किसानों की सबसे महत्वपूर्ण और उचित मांग है, भले ही बहुत कम किसान बाज़ार में सरप्लस उत्पादन कर पा रहे हैं। वह चाहे जितना चाहे इसे ख़ारिज भी नहीं कर सकती। इसीलिए यह सिर्फ़ जुमला ही है: "एमएसपी थी, है और रहेगी!"।

भारत सरकार के लिए तुरुप का इक्का डब्ल्यूटीओ का एओए ही है। भारत सरकार को उम्मीद है कि सुपर-नेशनल ऑथॉरिटी पर आरोप लगाने से वह आख़िरकार बेहद कम राजनीतिक नुकसान के साथ इनकार कर सकेगी।

इसके तहत काम शुरू हो भी चुका है: पीएम ने ऐलान कर दिया ही कि भारत ने सरकारी स्टॉकहोल्डिंग्स से खाद्यान्न निर्यात करने के लिए "डब्ल्यूटीओ से अनुमति" मांगी है। वह जानते हैं कि बाली में "पीस कलॉज़" पर हुए समझौते के बावजूद, एओए की मौजूदा व्यवस्था के तहत ऐसी कोई "अनुमति" संभव नहीं है।

किसानों की प्रतिक्रिया क्या होनी चाहिए? क्या किसान नेताओं को डब्ल्यूटीओ फ़ोरम में एओए में पर उचित संशोधन करने के सवाल पर भारत सरकार से विस्तृत टेक्नो-लीगल बातचीत करनी चाहिए? क्या भारत सरकार इन तर्कों का जवाब देगी? और अगर इस बातचीत का एक परिणाम निकल भी आया, तो क्या यह एओए में उचित संशोधन कर पाने के लिए काफ़ी होगा?

इस दृष्टिकोण के बारे में एक पल सोचने पर इसके दुर्बल चरित्र का एहसास हो जाता है।

किसान आंदोलन का नेतृत्व कर रहे संगठन जैसे ग़ैर सरकारी संगठन हर पड़ाव पर ख़ुद को तथ्यों और तर्कों दोनों के मामले में बिना तैयारी का पाएंगे। इसके अलावा, डब्ल्यूटीओ फ़ोरम का नतीजा संभवतः इससे

तय किया जाएगा कि भारत सरकार डब्ल्यूटीओ फ़ोरम में न सिर्फ़ अपने रुख बल्कि अपने तर्कों के बल पर कितना समर्थन देने को तैयार होती है या दे पाती है। और किसान संगठन जैसे ग़ैर सरकारी संगठनों के पास इस समर्थन को हासिल करने का कोई ज़रिया नहीं है। और इसकी कोई संभावना नहीं है कि डब्ल्यूटीओ के प्रमुख सदस्य अमेरिका, ईयू, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड(अगर हम साउथ के 2 प्रमुख देशों अर्जेंटीना और ब्राज़ील को छोड़ भी दें) कभी भी एओए में ऐसे उल्लंघन की 'अनुमति' देंगे, जो वास्तव में उन सभी ने परेशान करेगा जिन्होंने डब्ल्यूटीओ बनने से पहले लंबी बातचीत के दौर से हासिल किया था, इस बातचीत में एक अहम कामयाबी 1992 में अमेरिका और ईईआई(ईयू) के बीच हुआ ब्लेयर हाउस समझौता था।

इसलिए यह तो नामुमकिन सा लगता है। किसान संगठन जैसी कोई भी ग़ैर-सरकारी एजेंसी जब भारत सरकार से अंतर्राष्ट्रीय समझौतों के मुद्दों पर बहस या लड़ाई करना चाहती है, तो उसको इस तरह की स्थिति का हमेशा सामना करना पड़ता है।

ऐसे में सबसे स्पष्ट और असरदार रणनीति यही है कि भारत सरकार से किसान संगठनों के मुद्दों पर बहस की जाए। जैसा कि किसानों ने "काली कृषि क़ानूनों" और "एमएसपी" पर आंदोलन शुरू कर के किया भी है। "तीन कृषि क़ानूनों" को किसानों की अपने मैदान और मुद्दों पर लड़ी गई लंबी लड़ाई की वजह से वापस के लिया गया। इसकी वजह यह भी रही कि किसानों ने अपनी लड़ाई में किसी विदेशी समझौते (एओए), और विदेशी संगठन (डब्ल्यूटीओ) को मुद्दा नहीं बनाया। इसकी ताक़त राजनीतिक थी, और यह तभी कामयाब हुए क्योंकि इसने भारत सरकार की सबसे कमज़ोर नब्ज़ को दबा दिया था।

और सरकार को "काली कृषि क़ानून" वापस लेने पर मजबूर कर के इतिहास बनाया गया था।

एमएसपी के लिए अपने निरंतर संघर्ष की प्रभावी खोज की पहली ज़रूरत यह समझना है कि विश्व व्यापार संगठन का एओए भारत सरकार को उस तरह की नीति स्वतंत्रता की अनुमति कभी नहीं देगा। यह एओए में "यहाँ किसी कलॉज़ में चालाक संशोधन" या "वहां एक फ़ुटनोट में एक चालाक बिंदु जोड़ने" की बात नहीं है। जैसा कि हमने पहले कहा है, यह नॉर्थ की तीन प्रमुख उपलब्धियों में से एक को नकारने के बराबर है, जिसकी वजह से साउथ द्वारा चुकाई क़ीमत पर विश्व व्यापार संगठन का निर्माण हुआ था :

A. "सर्विसेज़" सेवा" बाज़ारों को खोलना, जिसने नव-साम्राज्यवाद के सार और व्यापक उपस्थिति का रूप लेकर वित्त पूंजी के वैश्विक प्रभुत्व का मार्ग रास्ता तैयार किया

B. तथाकथित "इंटेलेक्चुअल प्रोपर्टी राइट्स" से प्राप्त रेंटियर इनकम के माध्यम से नॉर्थ की वृद्धि के लिए एक नया और विस्तारित स्रोत बनाना;

और एओए के माध्यम से एक नया निर्भरता संबंध बनाना जिसमें (i) नॉर्थ में कृषि के अत्यधिक सब्सिडी वाले पैटर्न को क़ानूनी मान्यता शामिल है; (ii) नॉर्थ के कृषि व्यवसाय के लिए खुले बाज़ार सुनिश्चित करने के लिए साउथ में एक कठोर अनुशासन; और दक्षिण में सब्सिडी और सार्वजनिक स्टॉकिंग जैसी सहायक राज्य नीतियों को रोकना/सख़्त रूप से विनियमित करना; और (c) एक ऐसा आर्थिक वातावरण बनाना जिससे साउथ की ट्रॉपिकल ज़मीन को खाद्यान्न उत्पादन से दूर करके "विदेशी" उपज और सस्ते रॉ मटेरियल के लिए नॉर्थ की मांगों और प्राथमिकताओं को पूरा करने की दिशा में धकेल दिया जाए।

यह याद करना बहुत ज़रूरी है कि योग्य है कि अमेरिका और ईईसी दोनों ने दशकों तक कृषि उत्पादन और व्यापार नीतियों के संबंध में बड़े स्तर पर स्वायत्तता का आनंद लिया था। अमेरिका ने जीएटीटी के गठन के समय से ही, जीएटीटी के किसी भी अनुशासन से कुख्यात "छूट" प्राप्त कर ली थी। और ईईसी ने अपने अस्तित्व में आने के तुरंत बाद, एक "सामान्य कृषि नीति" की स्थापना की, जिसने उसके सदस्यों के लिए अपनी कृषि की सब्सिडी के उदार शासन को सुरक्षित किया, जिससे निर्यात बढ़ा। 1950 के दशक में कृषि उत्पादों का एक बड़ा इम्पोर्टर रहा ईईसी, 1980 के दशक में एक प्रमुख एक्सपोर्ट बन गया, जिससे विश्व बाज़ारों में अमेरिका के प्रभुत्व को ख़तरा पैदा हो गया, जिसके जवाब में, अमेरिका ने उरुग्वे दौर में एक व्यापक अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की मांग की, जो एओए के गठन के रूप में पूरी हुई। डब्ल्यूटीओ के एओए के बनने से पहले यह शर्त थी कि कृषि के दो बड़े सहायकों के बीच अपने शासन को पर्याप्त रूप से व्यवहार में बनाए रखने के लिए एक समझौता किया जाए।

III

बदलते अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण में, जो कभी नहीं हुआ था उसके अब होने की संभावना है। भोजन की कमी अब सिर्फ़ ग़रीब, थर्ड वर्ल्ड देशों तक सीमित नहीं है, बल्कि अमीर, फ़र्स्ट वर्ल्ड देशों तक भी पहुंच रही है। जैसा कि पहले भी बताया गया, मौजूदा वैश्विक व्यवस्था को सबसे बड़ी चुनौती देने वाला गेहूं का बड़ा एक्सपोर्टर है। साउथ के कुछ देश जैसे अर्जेंटीना, ब्राज़ील, मेक्सिको, थाईलैंड, मलेशिया, म्यांमार कृषि उत्पादों के ठीक-ठाक एक्सपोर्टर हैं।

C. मौजूदा अहम मोड़ पर वैश्विक कृषि अर्थव्यवस्था के पूरे संकट पर नए सिरे से नज़र डालने के लिए, विशेष रूप से साउथ के देशों का समर्थन जुटाने के लिए डब्ल्यूटीओ में एक साहसिक पहल की ज़रूरत है। मार्गदर्शन के सिद्धांत होने चाहिए:

A. सभी देशों की खाद्य संप्रभुता सुनिश्चित करना

B. विकासशील देशों को कृषि उत्पाद, मूल्य निर्धारण, आय और व्यवसाय में नीतिगत स्वायत्ता सुनिश्चित करना; ख़ासतौर से खाद्य सुरक्षा और किसानों के लिए फायदेमंद मूल्य निर्धारण एवं आय और गैर कृषि कामों के लिए अतिरिक्त कृषि श्रम बल की व्यवस्था करना;

C. कृषि उत्पादों के लिए अंतरराष्ट्रीय व्यवसाय में समान और निष्पक्ष अवसरों को बढ़ावा देना;

D. खाद्य पदार्थों के व्यापार के लिए प्रत्यक्ष उपायों को बढ़ावा देना, ख़ासतौर से विकासशील देशों में सरप्लस और घाटे वाले देशों के पारस्परिक लाभ के लिए

E. कीमतों में स्थिरता सुनिश्चित करने और जलवायु परिवर्तन या अनुमानित कारणों से होने वाले नुकसान की भरपाई के लिए क्षेत्रीय/राष्ट्रीय स्तर पर खाद्य भंडार स्थापित करना और अंतरराष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देना

F. ऐसी कृषि गतिविधियों/प्रथाओं को बढ़ावा देना जिससे भूमि और पर्यावरण का संरक्षण हो सके, पानी का सही इस्तेमाल और संरक्षण सुनिश्चित करना

G. कृषि उत्पादन, भंडारण, प्रसंस्करण, व्यवसाय और शोध आदि के लिए स्थानीय, क्षेत्रीय, और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सहकारी दृष्टिकोण को बढ़ावा देना।

काफ़ी हद तक नीतिगत स्वाययत्ता एक ऐसा मुद्दा है जहां दक्षिण के अधिकांश देशों का सहयोग और एकजुट होना संभव है। कुछ विकसित देश जैसे जापान, दक्षिण कोरिया, भी इसमें अपनी रुचि दिखा सकते हैं।

रूस और चीन को ऐसे पहल की खिलाफ़त नहीं करनी चाहिए। रूस ने वैश्विक स्तर पर अमेरिकी डॉलर के वर्चस्व को बहुत चालाकी से चुनौती दी है। इसमें चीन रूस का पूरा समर्थन कर रहा है। चीन रूस का पूरा समर्थन कर रहा है। चीन रूस का पूरा समर्थन कर रहा है। साउथ से एओए की मौजूदा व्यवस्था की समीक्षा और उस पर पुनर्विचार करने का आह्वान किया गया है। एओए अमेरिका और ईईसी और इसके कृषिव्यापार कम्पनियों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए बनाया गया है। इस आह्वान को चीन और रूस की तरफ़ से सकारात्मक प्रतिक्रिया मिलने की पूरी संभावना है। और भारत और उसकी मौजूदा सरकार के लिए यह दक्षिण के देशों के बीच भारत की पारंपरिक भूमिका को प्रमुखता से बहाल करने का एक स्वागत योग्य अवसर होना चाहिए। यह रूस, चीन और भारत के लिए फ़ायदे की स्थिति होगी।

और साथ ही, भारत सरकार को एमएसपी पर अपनी मौजूदा दुविधा से निकलने के लिए एक गरिमापूर्ण और किसान हितैषी रास्ता मिल जाएगा। एओए और डब्ल्यूटीओ का किसानों के मुद्दों के मुकाबले कम राजनीतिक मूल्य होगा, इसलिये इसका इस्तेमाल करने के बजाए भारत सरकार को अपनी दुविधा को अवसर में बदल लेना चाहिये। जिस साहसिक पहल का सुझाव दिया गया है, वह एओए अनुशासन पर प्रतिबंध लगाने में कामयाब होगी।

ज़ाहिर तौर पर डब्ल्यूटीओ अपने 27 साल के इतिहास में सबसे कमज़ोर स्थिति में है। इसने अपनी मुख्य भूमिका यानी व्यापार विवादों में मध्यस्थता करने की भूमिका खो दी है। अमेरिका ने ट्रंप के दौर में अपीलेट डिस्प्यूट सेटलमेंट बॉडी को विकलांग बना दिया था। और फ़्री ट्रेड और आरईसीपी समझौतों ने अपना ध्यान डब्ल्यूटीओ से हटा लिया है।

ट्रंप के दौर में चीन ने बहुपक्षवाद को फिर से स्थापित करने और आगे बढ़ाने की कोशिश की थी मगर उसे कोई ख़ास कामयाबी नहीं मिली। कोविड-19 संबंधी मुद्दों ने चीन को एक अलगाव में रहने पर मजबूर कर दिया। और चीन ने दूसरे खेमे में जाने का फ़ैसला कर लिया है।

इस संदर्भ में, भारत के लिए यह दयनीय है कि वह एमएसपी की गारंटी या गेहूं के निर्यात पर डब्ल्यूटीओ से "अनुमति" मांगे।

इसके विपरीत, भारत को कृषि उत्पादन और व्यापार की व्यवस्था पर एक नई और समान व्यवस्था के अभियान की पहल करनी चाहिए, उसे तैयार करना और उसका नेतृत्व करना चाहिये।

और अब एमएसपी पर लक्षित किसान आंदोलन को भी इस पहल के समर्थन में व्यापक राजनीतिक दबाव बनाना चाहिये, जैसा उसने काले क़ानूनों को निरस्त करने के लिए बनाया था।

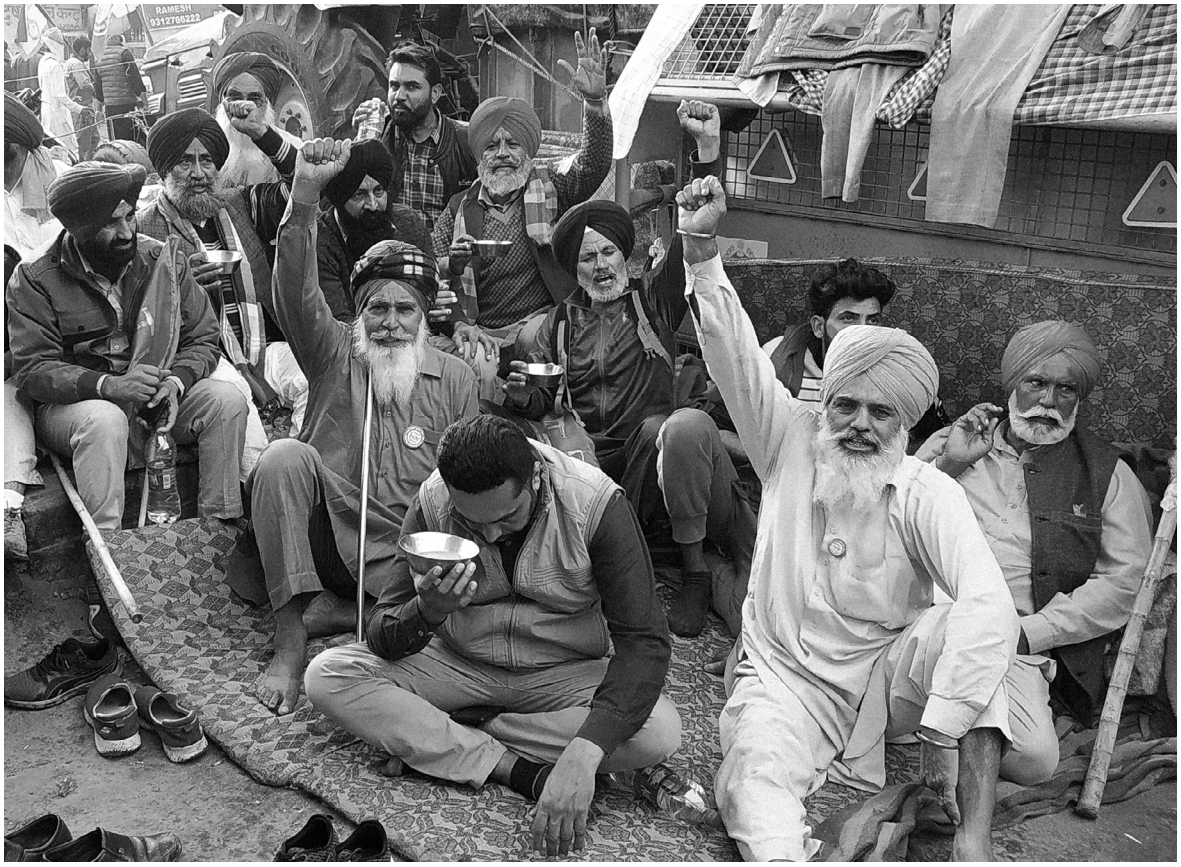

5. भारत के किसानों, एक हो!
एस.पी. शुक्ला

22.3.2021

भारत के किसानों, एक हो! ताकि बचा सको अपनी ज़मीन, अपनी रोज़ी, अपनी पहचान; और ताकि सुनिश्चित कर सको सहयोगी, न्यायिक, दूरगामी और आत्मनिर्भर विकास सभी के लिए।

कॉर्पोरेट कैपिटल ने अपने सामने आए सबसे बुरे संकट से बचने के लिए अपनी हताशा को ज़ाहिर करते हुए एक आख़िरी हमला किया है।

उद्योग, व्यापार और अर्थव्यवस्था को तो यह निगल ही चुका है, अब इसने अपनी लालच भरी नज़रें ज़मीन और किसानी के साथ साथ सार्वजनिक क्षेत्र, जिसमें स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक कल्याण के बुनियादी ढांचे और सेवाएँ शामिल हैं, उसमें मौजूद जनता की संपत्ति पर डाली हैं।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसकी निगाह अब उपजाऊ ट्रॉपिकल और सब ट्रॉपिकल ज़मीन और विश्व स्तर पर इसकी अनोखी उत्पादक क्षमता पर टिकी हुई है।

याद रखिए कि यह हमला नया नहीं है: 18वीं सदी में शुरू हुए कॉलोनियल दौर में भारतीय किसानी इसका पहला शिकार थी। इतिहास बदले की भावना से ख़ुद को दोहरा रहा है।

कॉलोनियल दमन के बाद बनाए गए वेलफ़ेयर स्टेट में कृषि को नए मौक़े दिये गए थे। नई टेक्नोलॉजी और काफ़ी सहायक सरकार के हस्तक्षेप से राष्ट्रीय खाद्य पर्याप्तता और किसानों की भौतिक स्थिति में भारी बदलाव आया। यह बदलाव किसानों के विभिन्न वर्गों के लिए समान नहीं था। न ही यह भौगोलिक कवरेज के मामले में सार्वभौमिक था। फिर भी, इसने समग्र रूप से किसानों की भलाई का वादा किया। यही वादा है, यही संभावना है जिसे अब ख़त्म करने की कोशिश की जा रही है।

हालिया हमला तीन कृषि क़ानूनों के रूप में सामने आया है जो पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और राजस्थान के समृद्ध किसानों को बर्बाद कर देगा और कृषि-आर्थिक अर्थव्यवस्था में कॉर्पोरेट की एंट्री का रास्ता साफ़ कर देगा। इसके साथ ही सरकार दुनिया भर में क़ानूनी तौर पर लागू कृषि बदलाव के 'इकनॉमिक लिंचपिन' एमएसपी को लागू करने को तैयार नहीं है। इससे सिर्फ़ कॉर्पोरेट पूंजी और के साथ मिलकर सरकार द्वारा किसानों पर शुरू किए गए हमले को उजागर करता है।

किसान आंदोलन इन क़ानूनों से सीधे तौर पर प्रभावित हो रहे इलाक़ों से शुरू हुआ। इसका आयोजन और नेतृत्व ख़ुद किसान ही कर रहे हैं। इसका व्यापक समर्थन आंतरिक भेदभाव और भौगोलिक दूरी और बँटवारे को भुलाते हुए हर तरह के किसानों ने किया है। इस आंदोलन ने जाति और धार्मिक बँटवारे को भी दूर कर दिया है। इसने सरकार द्वारा देशभक्ति के झूठे नारों से इस आंदोलन को बदनाम करने की साज़िशों का भी डट कर मुक़ाबला किया है। सबसे बड़ी बात यह है कि इसने जाति, धर्म, और क्षेत्र के पारंपरिक बोझ को हटाते हुए 'किसान' की पहचान को क़ायम करने का काम किया है। किसान आंदोलन ने राजनीतिक पार्टियों को ख़ुद से दूर रखने के बावजूद अपनी रणनीतिक तौर पर ख़ुद को राजनीतिक बनाते हुए राजनीतिक बुद्धिमानी का भी संदेश दिया है। इसने कॉर्पोरेट पूंजी का हमला झेलने वाले व्यापारियों और आढ़तियों से लेकर मज़दूर वर्ग, युवा और बेरोज़गारों का भी समर्थन मांगा है।

मगर फिर भी, कुछ ऐसे ग़लत रास्ते भी हैं जिसके ख़िलाफ़ आंदोलन को ख़ुद की सुरक्षा करने की ज़रूरत है।

ऐसा ही एक ग़लत रास्ता या फ़ौल्टलाइन है एक तरफ़ बड़े किसानों और दूसरी तरफ़ छोटे और हाशिये के किसानों और भूमिहीन मज़दूरों के बीच का आंतरिक विवाद। आंदोलन ने अब तक सरकार की तरफ़ से मतभेद डालने के धूर्त प्रयासों के बावजूद अपनी एकजुटता बनाए रखी है। मौजूदा समय में साझी आर्थिक भलाई के सवाल ने किसानों को एक साथ लाकर खड़ा कर दिया है। बड़े किसानों के पास मौजूद संसाधन और बाक़ियों की बड़ी संख्या ने इस आंदोलन की शक्ति में एक दूसरे का सहयोग किया है। पंजाब, दिल्ली और हरियाणा में सिख लंगर और गुरुद्वारे, पश्चिमी यूपी, राजस्थान और हरियाणा में खाप पंचायत, और बाक़ी जगहों पर महापंचायत जैसे पारंपरिक सामाजिक संस्थानों ने आंदोलन की एकजुटता और गति बरक़रार रखने में अहम किरदार अदा किया है।

हालांकि, लंबे समय तक इस एकजुटता को क़ायम रखने के लिए अन्य पहलों की भी ज़रूरत है।

ग्रामीण-कृषि अर्थव्यवस्था का सहकारी तरीक़े से पुनर्निर्माण करना ऐसी सबसे ज़रूरी पहल होगी। यह छोटे और हाशिये के खेतों को व्यवहार्य आर्थिक संस्थाएं बनाएगा। इसके अलावा, सहकारी समितियों को इनपुट ख़रीद और आउटपुट प्रोसेसिंग गतिविधियों को भी शुरू करना होगा। खेती के सहकारी पुनर्निर्माण के बाद अतिरिक्त श्रमिकों और भूमिहीन श्रमिकों को कृषि अर्थव्यवस्था के संबन्धों के साथ साथ शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा जैसे बुनियादी ढांचे और सेवाओं के निर्माण में शामिल होंगे।

इस सब के लिए सरकार के समर्थन की ज़रूरत होगी। किसान आंदोलन की राजनीतिक ताक़त को ऐसी सरकार से भी समर्थन छीनने की कार्रवाई करनी होगी।

एक और कमी या फ़ौल्टलाइन है पर्यावरण से जुड़ी चिंताएँ। ग्रीन रीवोल्यूशन के बाद से पानी का ज़्यादा इस्तेमाल और इनओर्गेनिक फ़र्टिलाइज़र और केमिकल पेस्टिसाइड का इस्तेमाल किया जा रहा है। इसने मिट्टी को बुरी तरह से प्रभावित किया है। इसने पारिस्थितिक रूप से अवांछनीय मोनोकल्चर पैदा कर दिया है। किसानों को इन परिणामों की जानकारी है। हालांकि, इस स्थिति में कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए दूरगामी दृष्टिकोण से प्रयास करने की ज़रूरत है। जन-हितैषी और वैज्ञानिक भूमि और पानी इस्तेमाल की नीति की एक कारगर पहल सरकार की ओर से की जानी चाहिए; कृषि भूमि को कॉर्पोरेट को ट्रांसफ़र किए जाने पर रोक लगनी चाहिए; ओर्गेनिक कृषि का सहारा लेना चाहिए; अधिक विविधीकरण; ऐसी टेक्नोलॉजी के अनुसंधान और विकास में निवेश करना चाहिए जो केमिकल और पानी के अत्यधिक इस्तेमाल पर निर्भरता को कम करते हैं और साथ ही उत्पादन में भी अहम सहयोग करते हैं, जैसा कि क्यूबा में किया गया है।

तीसरी फ़ौल्टलाइन कृषि उत्पादन और व्यापार पर डबल्यूटीओ के अनुशासन से उत्पन्न होने वाले अंतर्राष्ट्रीय दायित्व हैं। सरकार अपने तथाकथित "सुधार एजेंडा" को आगे बढ़ाने के लिए इन दायित्वों को आख़िरी तर्क के रूप में पेश करेगी।

मौजूदा डबल्यूटीओ व्यवस्था तर्कहीन, अन्यायी और साम्राज्यवादी है। इसने भारतीय कृषि को बड़े कृषिव्यापारों के प्रभुत्व वाले वैश्विक बाज़ार से बांध दिया है। विकसित देशों की कृषि बुनियादी और गुणात्मक तौर पर अलग है। वहाँ कृषि का जीडीपी में योगदान 10% से भी कम है। यही हाल कृषि पर निर्भर श्रमिकों के प्रतिशत का है। यह हमारे यहाँ से एकदम अलग है क्योंकि यहाँ जीडीपी में योगदान 15% है और श्रमिकों की संख्या 50% से भी ज़्यादा है।

इसके अलावा, कम आय और कम पोषण के साथ इतनी बड़ी आबादी सरकार पर निर्भर करती है कि वह खाद्यान्न के आयात पर निर्भरता का जोखिम न उठाए और सार्वजनिक क्षेत्र में पर्याप्त स्वदेशी खाद्य उत्पादन और बड़े खाद्य भंडार के साथ खाद्य सुरक्षा प्रदान करे ताकि एक विशाल, कमज़ोर आबादी के लिए उचित मूल्य पर आपूर्ति सुनिश्चित हो सके।

डबल्यूटीओ के आने से पहले कृषि उत्पादन जीएटीटी का इतिहास और अमेरिका और ईईसी(यूरोपियन इकनॉमिक कम्यूनिटी, ईयू से पहले) के बीच हुए दीर्घकालिक समझौते इस बात का सबूत हैं कि यह मुद्दा कितना ठोस और ज़रूरी है। यह शक्तिशाली संस्थाएं कृषि को समर्थन देने वाली अपनी व्यवस्थाओं को हमेशा के लिए सुरक्षित रखने और इसके साथ ही, अपने सब्सिडी वाले कृषि उत्पादों के निर्यात के लिए विकासशील देशों के बाज़ारों को खोलने के अपने-अपने दोहरे उद्देश्यों को सुनिश्चित करने में सफ़ल रही थीं। लेकिन इसके

ठीक विपरीत, विकासशील देश आज भी आयात वृद्धि के ख़िलाफ़ न्यूनतम सुरक्षा उपायों की व्यवस्था को सुरक्षित करने और सरकारी ख़ज़ाने की क़ीमत पर न्यूनतम खाद्य भंडार बनाए रखने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। पिछले दो दशकों से इन मामूली मांगों पर समझौतों का दौर जारी है, मगर आज तक इसका कोई निष्कर्ष नहीं निकाल पाया है।

हमारे जैसी अर्थव्यवस्थाओं में कृषि की अनूठे स्टेटस की पहचान सुनिश्चित करने और राष्ट्रीय नीति निर्माण में बहुत अधिक स्वायत्तता की अनुमति देने वाली विशेष व्यवस्था को सुरक्षित करने के लिए अन्य समान रूप से विकासशील देशों के साथ मिलकर एक साहसिक और ठोस प्रयास की ज़रूरत है।

पिछली जीएटीटी व्यवस्था के दौरान अमेरिका को मिली स्थायी छूट और सीएपी(कॉमन एग्रिकल्चरल पॉलिसी) ईईसी में) को जारी रखा जाना और डबल्यूटीओ की मौजूदा व्यवस्था में सब्सिडी के "ग्रीन एंड ब्लू बोक्सेज़" के तहत अमेरिका और ईयू को उदार छूट की गारंटी देने वाले विचार हमारे जैसे देश के बड़े कृषि कार्यबल की अनियोजित स्थिरता को रोकने के नाज़ुक विचारों के मुक़ाबले काफ़ी कम दमदार थे। हमारे पास कृषि उत्पादन और व्यापार के संबंध में बहुत बड़ी स्वायत्तता की अपनी मांग को तेज़ करने के लिए एक मज़बूत तर्क है।

यही समय है डबल्यूटीओ के सामने इस मांग को रखा जाए। डबल्यूटीओ की एक मंत्रिस्तरीय मीटिंग नवंबर 2021 में होने वाली है। कथित तौर पर, डबल्यूटीओ के सामने काफ़ी समय से लंबित दो मामूली मांगों पर

अनुकूल निर्णय लेने के लिए भारत और चीन द्वारा शुरू किए गए क़दम के लिए पहले से ही काफ़ी समर्थन है। भारत को कृषि उत्पादन और व्यापार के संबंध में विकासशील देशों की राष्ट्रीय नीतियों के संबंध में बड़े स्तर पर स्वायत्तता का दावा करने के लिए एजेंडा के दायरे में वृद्धि को सुरक्षित करना चाहिए। ऐसा क़दम उठाने के लिए यह उचित समय है। मंदी की वैश्विक स्थिति, सप्लाई चेन के विघटन का हालिया वैश्विक अनुभव, महामारी के मद्देनज़र बढ़ती भूख और कुपोषण के बारे में व्यापक चिंता और भोजन में राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करने की स्पष्ट प्रवृत्ति - यह सभी पहलू ऐसे एजेंडा को आगे बढ़ाने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करते हैं।

और अंत में, एक संस्थान के तौर पर डबल्यूटीओ अपने 25 साल के इतिहास में इस वक़्त सबसे कमज़ोर स्थिति में है, इसकी वजह है फ़्री ट्रेड एरियाज़ और आर्थिक और व्यापार सहयोग व्यवस्था जैसे बड़े पैमाने पर हो रही क्षेत्रीय और वैश्विक पहलों से डबल्यूटीओ को दरकिनार करना और अमेरिका द्वारा उसे बहुपक्षीय व्यवस्था के चीफ़ मेंटर के रोल से हटा दिया जाना।

संक्षेप में, आज सरकार से यह उम्मीद नहीं की जाति है कि वह डबल्यूटीओ के निर्देशों का लापरवाही से पालन करने लगे और हमारे दायित्वों को डबल्यूटीओ के सामने तथाकथित "कृषि सुधार" के अपने उल्टे एजेंडे के रूप में पेश करने लगे। इसके विपरीत, सरकार से उम्मीद है कि कृषि के संबंध में उचित राष्ट्रीय नीति लागू करने के लिए डबल्यूटीओ के सामने और अधिक स्वायत्ता की जायज़ मांग को दृढ़ होकर रखे।

और अंत में, किसान आंदोलन की एकजुटता को जारी रखने और इसकी गति को और तेज़ करने के लिए, इन नई पहलों को अमल में लाने की ज़रूरत है :

यह समय है कि जन-हितैषी और वैज्ञानिक भूमि और पानी इस्तेमाल की नीति पर आधारित कृषि संस्कृति के पुनर्निर्माण की एक वैकल्पिक नीति की पहल की जाए; कृषि भूमि को कॉर्पोरेट को ट्रांसफ़र किए जाने पर रोक लगनी चाहिए; छोटे और सीमांत किसानों की जॉइंट फ़ार्मिंग सहकारी समितियां बनाई जाएँ; खेती के सहकारी पुनर्निर्माण के बाद अतिरिक्त श्रमिकों और भूमिहीन श्रमिकों को कृषि अर्थव्यवस्था के संबन्धों के साथ साथ शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा जैसे बुनियादी ढांचे और सेवाओं के निर्माण में शामिल हों; नई टेक्नोलॉजी लाई जाए जो पर्यावरणीय चिंताओं को भी ध्यान में रखे और साथ ही बेहतर उत्पादन भी करे; ग्रामीण-कृषि अर्थव्यवस्था को विस्तार देने और सामंजस्यपूर्ण नेटवर्क में चलाने के लिए अपेक्षित सहकारी समितियों के वेब के संचालन को मज़बूत करने के लिए कमोडिटी बैलेंस पर आधारित क्षेत्रीय योजना बनाई जाए; स्थानीय श्रम गहन विकास परियोजनाओं के माध्यम से वेज गूड्स के स्टॉक का पूंजीकरण किया जाए; खाद्यान्नों की ख़रीद, भंडारण और वितरण करने वाली स्थानीय सहकारी समितियां बनें; खाद्यान्न की ख़रीद को यूनिवर्सल पीडीएस से जोड़ा जाए; राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सरकारी/सहकारी समितियों की अहम भूमिका हो; कृषि उत्पादन और व्यापार पर डबल्यूटीओ अनुशासन में अधिक स्वायत्तता हासिल की जाए।

किसान आंदोलन ने सही मायनों ने अपने धीरज, नयापन, और राष्ट्रीय चरित्र को साबित किया है। इससे यह उम्मीद रखना स्वाभाविक है कि यह आगे चल कर न सिर्फ़ अपनी ज़मीन, अपनी रोज़ी और अपनी पहचान पर आए ख़तरे से ख़ुद को बचाने के लिए बल्कि आपसी सहयोग, जनता की एकजुटता और दूरगामी विकास की नींव रखने के लिए व्यापक पहल करता रहे।

6. कृषि संकट : नई पहलों की ज़रूरत

एस.पी. शुक्ला

17-12-2021

1. कृषि अर्थव्यवस्था गहरे संकट में फंसी हुई है। घरेलू किसानों की भूमि तेज़ी से कम हो रही है, संभवतः ग़ैर-कृषि इस्तेमाल के लिए जिसे "बाज़ार" ने लगातार प्रोत्साहित किया है। घरेलू किसानों ने पिछले 27 सालों में 40 हेक्टेयर ज़मीन गंवा दी है। 1991-92 से लेकर 2019-19 के बीच औसत जोत (भूमि) 1.34 हेक्टेयर से कम होकर 0.83 हेक्टेयर रह गई है। 2012-13 और 2018-19 के बीच क़रीब 70 लाख कृषि परिवारों ने पूरी तरह से खेती करना छोड़ दिया है।

2. उपलब्ध ज़मीन के असल विभाजन में काफ़ी ग़ैर-बराबरी है : 8% कृषि परिवारों के पास कोई ज़मीन नहीं है, यहाँ तक कि घर की ज़मीन भी नहीं है। 32% के पास सिर्फ़ घर के लिए ज़मीन है, मगर खेती के लिए कोई ज़मीन नहीं है। 31% के काफ़ी कम ज़मीन है, औसतन 0.2 हेक्टेयर यानी 1 एकड़ से भी कम। 14% के पास 0.7 हेक्टेयर ज़मीन है। इन 6% परिवारों के पास कुल कृषि ज़मीन का 41% हिस्सा है जबकि बाक़ी 94% के बाद 59% ज़मीन है।

3. ज़मीन पर मिट्टी की क्वालिटी, पानी की पहुँच और खेती के अन्य पहलुओं से यह ग़ैर-बराबरी बढ़ जाती है।

4. इतनी कम ज़मीन से न ही परिवार में मौजूद श्रमिकों को रोज़गार मिल पाता है न ही इससे होने वाली कमाई से परिवार की बुनियादी ज़रूरतें पूरी हो पाती हैं। भूमिहीन और कम भूमि वाले परिवारों के सदस्य गाँव में दिहाड़ी पर काम करते हैं या बाहर पलायन कर जाते हैं। कम वेतन और कम काम की वजह से वह छोटे क़र्ज़ लेते हैं और इन छोटे क़र्ज़ पर बेहिसाब ब्याज देते हैं। किसी भी एमर्जेंसी में वह अपनी ज़मीन को पूरा या आधा गिरवी रख कर पैसे लेने पर मजबूर हो जाते हैं।

5. 2018-19 के एनएसएसओ सर्वे के मुताबिक, हमारे देश में कुल 46.7 करोड़ लोग काम करते हैं। इनमें से 19.1 करोड़ कृषि क्षेत्र में काम करते हैं, 14.3 करोड़ सेल्फ़ एम्प्लोएड हैं, 4.6 करोड़ अस्थायी कर्मचारी हैं और 20 लाख नियमित कर्मचारी हैं।

6. उपलब्ध ज़मीन के आंकड़ों से यह साफ़ ज़ाहिर है कि न ही सेल्फ़ एम्प्लोएड आबादी के पास ठीक से जीवनयापन करने के लिए पर्याप्त ज़मीन है, न ही अस्थायी कर्मचारियों के पास अपनी रोज़मर्रा की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त रोज़गार है। जब तक रोज़गार के अवसरों को बढ़ाया नहीं जाता और भूमि संबंधों को मौलिक रूप से पुनर्गठित नहीं किया जाता, कृषि संकट लगातार बेकाबू होता जाएगा और बार-बार पैदल चलते प्रवासी मज़दूरों के रूप में एक तबाही की तस्वीर पेश करता रहेगा।

7. जबकि कृषि भूमि तेज़ी से कम हो रही है और औसत आकार भी कम हो रहा है, अभी भी कुछ हिस्सों में अतिरिक्त ज़मीन(जैसे बेनामी ज़मीन या 'मठ') मौजूद है जिसे भूमिहीनों के बीच बांटने की ज़रूरत है।

8. जब तक ग़ैर-लाभकारी ज़मीन को आर्थिक ज़मीन में शामिल नहीं किया जाता, तब तक बेहतरीन फ़सल, पानी के उचित उपयोग और मचीनों के कुशल इस्तेमाल के लक्ष्य को हासिल नहीं किया जा सकता।

9. इसके लिए सहयोगी या जॉइंट फ़ार्मिंग के बड़े प्रोग्रामों की ज़रूरत है। इसके लिए बड़ा आर्थिक सहयोग और ढेर सारे लोगों को जुटाने की ज़रूरत होगी।

10. इसके बावजूद, रोज़गार के लिए काफ़ी अतिरिक्त लोग होंगे जिन्हें गांवों के पुनर्निर्माण में शामिल करने की ज़रूरत होगी। इसके साथ ही, डेयरी, पॉल्ट्री और हॉर्टिकल्चर जैसी कृषि और अन्य संबंधित कामों में ऐसे अतिरिक्त श्रमिकों को शामिल करने के लिए चिन्हित करना होगा।

11. यह एक बड़ा काम है जिसके लिए न सिर्फ़ निरंतर और व्यापक जन समूह और बड़े आर्थिक सहयोग की ज़रूरत है बल्कि घरेलू के साथ-साथ विदेशों की भी "बाज़ार की ताक़तों" के संचालन से नीतिगत सुरक्षा की भी ज़रूरत है।

12. बेशक, यह बातें बहुत बड़ी लगती हैं। लेकिन अगर हमने इसके लिए कार्रवाई नहीं की तो हम जिस भारत को देख रहे हैं उसका भौतिक और आध्यात्मिक मूल ख़त्म हो जाएगा।

13. किसान नेताओं का तीन कृषि क़ानून वापस करवाने के लिए ज़मीन से जुड़े विरोध को इस संदर्भ में देखने की ज़रूरत है। जहाँ तक गहरे कृषि संकट की बात है, तो कुछ बदला नहीं है। एमएसपी की अधूरी मांग उनके आंदोलन के दौरान उनके दृढ़ संकल्प का प्रतीक है। यह उनकी रोज़ी-रोटी और ज़मीन को हथियाने में लगी हुई ताक़तों के आगे आत्मसमर्पण न करने के उनके संकल्प का प्रतीक है।

14. हमारी कृषि अर्थव्यवस्था जिस पर्यावरणीय चुनौती का सामना कर रही है, वह दरअसल "बाज़ार की ताक़तों" की ही देन है, जिसे सरकारी नीतियों की मदद और प्रेरणा मिली है, हालांकि शुरूआत में यह खाद्य आत्मनिर्भरता हासिल करने के अच्छे इरादों से प्रेरित थी। इसलिए, "बाज़ार की ताक़तों" से हटकर और सहकारी संस्थाओं के माध्यम से लोगों की भागीदारी के साथ जन-समर्थक योजनाएँ बनाने और उन्हें लागू करने की दिशा में क़दम उठाए जाने की ज़रूरत है।

15. तत्काल प्राथमिकता क्या होनी चाहिए :

A. साउथ के देशों को डबल्यूटीओ के साथ मिल कर हमारे किसानों को सहायता, हमारे सार्वजनिक खाद्य स्टॉक, आयात प्रतिबंधों को लागू करने की हमारी आज़ादी, कृषि और उससे जुड़े उत्पादों के उत्पादन, प्रोसेसिंग, मार्केटिंग और डिस्ट्रिब्यूशन में सहकारी पहलों के लिए पर्याप्त सहायता और प्रोत्साहन की हमारी व्यवस्था, और हमारे कृषि उत्पादन, व्यापार और वितरण व्यवस्थाओं को पुनर्गठित करते हुए पर्यावरण की सुरक्षा के लिए हमारी विभिन्न पहलों के संदर्भ में एक उचित पहल कर के एओए के कड़े नियमों पर रोक लगाने की ज़रूरत है। ताकि हमारी कृषि अर्थव्यवस्था जिस कमज़ोर आर्थिक संतुलन का सामना कर रही है उसके हानिकारक प्रभावों को रोका जा सके।

B. भूमि और पानी के इस्तेमाल के लिए एक वैज्ञानिक, जन-हितैषी और पर्यावरण के अनुकूल नीति बनाने की पहल।

C. कॉर्पोरेट सेक्टर को ग़ैर कृषि इस्तेमाल के लिए कृषि भूमि को ट्रांसफ़र किए जाने पर तत्काल रोक।

D. अतिरिक्त ज़मीन को भूमिहीन जनता को बांटने के लिए जगह का तत्काल चुनाव।

E. ग़ैर-आर्थिक ज़मीन की जॉइंट फ़ार्मिंग (सहयोगी खेती) के लिए सहकारी समितियों के एक नेटवर्क को आयोजित करना और इन सहकारी समितियों को आर्थिक और प्रबंधन के स्तर पर विशेष सहयोग करना।

F. ग्रामीण बुनियादी ढांचे के निर्माण, मरम्मत, वृद्धि और रखरखाव के लिए अतिरिक्त श्रमिकों की श्रम सहकारी समितियों को आयोजित करना।

****

नोट करें : मुझे पिछले कुछ सालों में डॉ. जया मेहता के कृषि संकट पर व्यापक अध्ययन और लेखों से बहुत मदद मिली है, ख़ास तौर पर,

Agrarian Crisis: Life at Stake in Rural India जया मेहता, विनीत तिवारी, रोशन नायर: जोशी अधिकारी इंस्टीट्यूट ऑफ़ सोशल स्टडीज़, 2010

Revolutionary Potential of Women Workers in Agriculture. जया मेहता रोज़ा लक्समबर्ग स्टीफ़लंग साउथ एशिया, 2019

7. संयुक्त राष्ट्र के 'राइट टु फ़ूड' के विशेष दूत का वैश्विक खाद्य संकट पर ख़त

माइकल फ़खरी

4 May 2022

प्रिय मिस कोंजो-इवाला,

मुझे मानवाधिकार परिषद के प्रस्ताव 49/13 के अनुसार, भोजन के अधिकार पर विशेष दूत के रूप में आपको संबोधित करने का गौरव प्राप्त हो रहा है।

इस संबंध में, मैं आपका ध्यान विश्व खाद्य व्यवस्था की मौजूदा ख़ामियों के बारे में मेरी कुछ चिंताओं की ओर ले जाना चाहूँगा। 2 सालों से ज़्यादा समय से भूख, अकाल और कुपोषण की बढ़ती दर और खाद्य प्रणाली में

बढ़ते विवाद के बावजूद खाद्य संकट पर विश्व स्तर पर संयोजित कोई प्रतिक्रिया नहीं आई है। हालांकि हालिया हफ़्तों में रशिया द्वारा यूक्रेन पर अनुचित हमले के बीच खाद्य प्रणाली पर हुई हैरानी पर कई प्रतिक्रियाएँ देखने को मिली हैं। संयुक्त राष्ट्र के अन्य मानवाधिकार विशेषज्ञों की तरह मैं भी जंग के दौरान मानवाधिकार हनन की निंदा करता हूँ। हालांकि तथ्य यह भी है कि अब जाकर इतने लंबे समय से चल रहे वैश्विक खाद्य संकट पर कोई प्रतिक्रिया आना इस ओर भी इशारा करता है कि शायद इस समय अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों का औचित्य और राष्ट्रिय सरकारों की सरकार चलाने की क्षमता भी दांव पर लगी हुई है।

कोविड-19 महामारी की शुरूआत से ही कई सरकारें और नागरिक समाज संगठन ह्यूमन राइट्स काउंसिल, इंटरनेशनल लेबर ऑर्गनाइज़ेशन और कमेटी ऑन वर्ल्ड फ़ूड सेक्युर्टी की ओर से एक संयोजित कार्रवाई की मांग कर रहे हैं। 13 अप्रैल 2022 को आपने (वर्ल्ड बैंक ग्रुप(डबल्यूबीजी), इंटरनेशनल मोनेटरी फ़ंड(आईएमएफ़) और वर्ल्ड फ़ूड प्रोग्राम्स(WFP)) के नेताओं के साथ मिल कर एक बयान जारी किया था और चेतावनी दी थी कि यूक्रेन की जंग ने कोविड-19 की वजह से बने दबाव को और बढ़ा दिया है और खाद्य सुरक्षा पर तत्काल, संयोजित कार्रवाई की बात कही थी और देशों से मांग की थी कि वे खाद्य या फ़र्टिलाइज़र के निर्यात पर प्रतिबंध न लगाएँ ताकि मौजूदा वैश्विक संकट से खाद्य प्रणाली पर आए संकट का सामना किया जा सके।

आपके साझे बयान का स्वागत करते हुए और लंबे समय से जारी वैश्विक खाद्य संकट की बात करते हुए तत्काल कार्रवाई का आह्वान करने पर आपकी सराहना करते हुए, मैं इससे जुड़ी अपनी कुछ चिंताएँ आपके साथ साझा करना ज़रूरी समझता हूँ। यह बयान आपातकालीन खाद्य आपूर्ति के प्रावधान, वित्तीय सहायता, कृषि उत्पादन में वृद्धि और खुले व्यापार(ओपन ट्रेड) पर केंद्रित है। मेरी चिंता यह है कि यह विश्व खाद्य प्रणाली की चुनौतियों की बात न करते हुए वही बातें कर रहा है जो विभिन्न संस्थान पिछले कई सालों से कहते आ रहे हैं।

मिस एनगोज़ी कोंजो-इवाला, डायरेक्टर-जनरल वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गनाइज़ेशन

समस्या को समझना

खाद्य प्रणालियाँ दुनिया की ग्रीनहाउस गैस का क़रीब एक तिहाई हिस्से का उत्सर्जन करती हैं और जानवर और पौधों तेज़ी से कम होती संख्या में भी इनका हाथ है। गहन औद्योगिक कृषि और निर्यात उन्मुख (एक्सपोर्ट ऑरिएंटिड) खाद्य नीतियों ने भी इस नुकसान को बड़े स्तर पर प्रेरित किया है। 1950 के दशक से, जब सरकारों ने ग्रीन रिवॉल्यूशन को अपनाना शुरू किया था, विश्व की खाद्य प्रणालियों को तेज़ी से औद्योगिक मॉडल के इर्दगिर्द ही तैयार किया जाता रहा है, इसके पीछे विचार यह था कि अगर जनता औद्योगिक उनपुट ख़रीदने में सक्षम होगी तो वह ज़्यादा मात्र में खाद्य उत्पादन कर सकती है। उत्पादकता को मानव और पर्यावरणीय स्वास्थ्य के संदर्भ में नहीं, बल्कि विशेष रूप से कोमोडिटी आउटपुट और आर्थिक विकास के संदर्भ में मापा गया था। इसी प्रणाली ने कार्बन, नाइट्रोजन और फॉस्फ़ोरौस साइकल को बाधित कर दिया था क्योंकि इसके लिए किसानों को लंबे समय से चली आ रही रीजनरेटिव और एकीकृत कृषि कार्य प्रणाली को विस्थापित कर फॉसिल फ़्यूल आधारित मशीनों पर निर्भर रहना पड़ता है।

इसलिए, जब आप उत्पादन के तरीक़ों या खाद्य पदार्थों के बारे में कोई साफ़ इशारा दिये बग़ैर उत्पादन बढ़ाने की बात करते हैं, तब आपके सामने पिछली ग़लतियाँ दोहराने का ख़तरा रहता है। 1960 के दशक के मध्य से

वैश्विक खाद्य उत्पादन में 300 प्रतिशत की बढ़ोतरी होने के बावजूद कम होती लाइफ़ एक्सपेक्टेंसी में कुपोषण का काफ़ी हाथ है। भूख की समस्या की वजह वैश्विक स्तर पर कम होता उत्पादन नहीं, बल्कि खाद्य तक पहुँच में ग़ैर-बराबरी और अन्य बाधाएँ हैं।

इसके साथ ही, बुनियादी समस्या यह नहीं है कि यूक्रेन में जारी जंग की वजह से किसानों की केमिकल फ़र्टिलाइज़र तक पहुँच बाधित हुई है, बल्कि यह है कि किसान केमिकल फ़र्टिलाइज़र पर बहुत अधिक निर्भर हैं। चेमिकल फ़र्टिलाइज़र खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित नहीं करते हैं। उनके व्यापक उपयोग से कम समय के लिए फ़सल उत्पादन तो बढ़ जाता है मगर लंबे समय के लिए कार्पोरेशन और व्यापार पर निर्भरता बढ़ जाती है। केमिकल फ़र्टिलाइज़र मिट्टी ने न्यूटरिएंट्स को भी ख़त्म कर देते हैं लोगों के एक स्वस्थ और दूरगामी पर्यावरण के अधिकार का हनन करते हुए पर्यावरण को काफ़ी नुकसान पहुंचाते हैं। तत्काल प्रभाव से यह ज़रूरी है कि फ़र्टिलाइज़र उन खेतों तक पहुँचें जहाँ खेती केमिकल पर ही निर्भर है मगर अंतिम लक्ष्य उन्हें इस निर्भरता से दूर करने का ही होना चाहिए।

समस्या का एक स्त्रोत हैं वैश्विक बाज़ार

आप जिन समाधानों का सुझाव देंगी वह विरोधाभासी या प्रतिकूल हो सकते हैं।

उदाहरण के तौर पर, वर्ल्ड बैंक ने हाल ही में देशों से मौजूदा कृषि समर्थक नीतियों में सुधार कर बेहतर नतीजे देने को कहा है जो खाद्य ग़ैर बराबरी और जलवायु परिवर्तन का हल निकाल सकते हैं। फिर भी, ख़ास तौर

पर विकासशील देशों के लिए डबल्यूटीओ के मौजूदा नियम और समझौते इस तरह के बदलावों को काफ़ी मुश्किल बना देते हैं। डबल्यूएफ़पी ने अपनी कोशिशों को तत्काल मानवीय सहायता पर केन्द्रित तो किया है मगर वह यह सुनिश्चित करने के लिए काफ़ी नहीं है कि डबल्यूएफ़पी की सप्लाई चेन लोकल और क्षेत्रीय खाद्य प्रणालियों में बदलाव लाये और लोगों की गरिमा और पारिस्थितिक जैव विविधता(ईकोलोजिकल बायोडाइवर्सिटी) को बेहतर करे। वर्ल्ड बैंक और आईएमएफ़ ने खाद्य और कृषि क्षेत्र की सहायता तो की है, मगर ऐसा करते हुए बाज़ार के नेतृत्व वाले भूमि सुधारों और वित्तीय क्षेत्र को नियंत्रण मुक्त करने पर जोर दिया गया है। इसने विकासशील देशों में ख़ास तौर पर छोटे किसानों और स्थानीय जनता के बीच भूमि अधिग्रहण को शुरू करते हुए और कोमोडिटी के भविष्य पर अटकलें लगाते हुए ग़ैर बराबरी और खाद्य असुरक्षा को बढ़ावा दिया है।

यूक्रेन की जंग वैश्विक खाद्य प्रणाली को लगा हालिया झटका है, मगर यह वजह नहीं है। 2011 में एफ़एओ के अनुसार खाने की क़ीमत सबसे ज़्यादा दर्ज की गई थी और पिछले साल दुनिया भर में महंगाई बढ़ रही है। 2007 और 2010 की तरह, आज की सबसे बड़ी समस्या सिर्फ़ बढ़ती क़ीमत नहीं है बल्कि क़ीमतों की अस्थिरता भी है। वास्तव में, बहुत लंबे समय से भोजन को एक कोमोडिटी या वित्तीय साधन के रूप में माना जाता रहा है, जिसपर अक्सर अटकलें भी लगाई जाती हैं। बायोफ़्यूल के बढ़ते से स्थिति और ज़्यादा ख़राब हो गई है, जबकि सोयाबीन और मक्का जैसे उत्पाद सिर्फ़ भोजन नहीं बल्कि फ़्यूल हैं जिसने खाद्य तेल की क़ीमत को सीधे-सीधे पेट्रोल की क़ीमत से जोड़ दिया है। खाद्य बाज़ारों में बाजार की एकाग्रता भी बहुत अधिक है और कृषि-खाद्य कंपनियां इन सभी संकटों के बीच भी अपने मुनाफ़े में वृद्धि करना जारी रखती हैं।

खाद्य प्रणाली के संकट की एक वजह अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार ही हैं। सबसे बड़ी समस्या यह है कि मौजूदा बाज़ार झटकों को संभाल नहीं पाते हैं और इसके बजाय इन्हें बढ़ाते हैं। क़ीमतों से सप्लाई और डिमांड की जानकारी नहीं मिलती बल्कि यह बाज़ार की ताक़त और निवेशकों के डर को दिखाता है। दुनिया के अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों इन बाज़ारों के डिज़ाइन और चलन में एक अहम किरदार निभाया है। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि जबकी आप आगे के रास्तों पर ध्यान दे रही हैं, तो आप अपने संस्थानों के उन तरीक़ों पर भी विचार करें जिनका इस संकट में हाथ है जिसका हम आज सामना कर रहे हैं।

नए ट्रेड नियमों को समाधान का हिस्सा बनाना चाहिए

आज की सबसे बड़ी समस्याओं में से एक यह है कि 1995 से डबल्यूटीओ के कृषि समझौतों में कोई बदलाव नहीं हुआ है। राष्ट्रीय खाद्य स्टॉकहोल्डिंग प्रोग्राम का कोई स्थायी समाधान न होना इस तथ्य को उजागर करता है कि आज सिर्फ़ कृषि नीति नहीं खाद्य सुरक्षा भी दांव पर लगी हुई है।

इसके साथ ही, डबल्यूटीओ के अंदर ही विभिन्न गठबंधनों के बीच यह आम राय बन रही है कि एओए पुराना और घिसा पिटा है। एओए के कुछ प्रावधान, जैसे कि घरेलू समर्थन और विशेष कृषि सुरक्षा पर अलग अलग नियम विशेष तौर पर विकासशील देशों के लिए हैं। हालांकि एओए में असाधारण प्रावधान भी हैं जो सैद्धांतिक रूप से ही विशेष देशों, या देशों के ग्रुप पर व्यापार के नकारात्मक प्रभावों को कम कर सकते हैं। वह देश जो अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों के आगे कमज़ोर हैं, उन्होंने विशेष और विशेष व्यवहार, विशेष सुरक्षा उपाय, विशेष उत्पाद, और सबसे कम विकसित और खाद्य आयात करने वाले विकासशील देशों पर पड़ने वाले सुधार के नकारात्मक प्रभावों को ध्यान में रखते हुए उपायों पर मंत्रिस्तरीय फ़ैसले लेने की क्रियावली को तैयार करने

या आगे बढ़ाने की कोशिश की है। इन प्रावधानों के स्पष्ट और अमल में लाने वाले नतीजे हो सकते थे मगर इसके बजाय इनका व्यवस्थित रूप से विरोध किया जा रहा है और इन्हें हाशिये पर रखा जा रहा है।

यह माना जाना एक चुनौती है कि खाद्य सुरक्षा को व्यापार नीति के अपवाद के रूप में देखा जाता है। हालांकि डबल्यूटीओ के संचालन के बारे में सूचित करने वाली कोई सुसंगत अंतर्राष्ट्रीय खाद्य नीति नहीं है, ठीक उसी तरह से जैसे रोम में बेस्ड एजेंसियों में व्यापार नीति पर कोई पर्याप्त चर्चा नहीं होती। यह देखना अभी बाक़ी है कि डबल्यूटीओ के अंतर्गत हम व्यापार नीति और खाद्य नीति पर कार्रवाई करने पर कोई चर्चा कर सकते हैं, या इसे कहीं और लेकर जाना होगा।

मैं इस बात को भी नज़र में लाना चाहता हूँ कि यूएन जनरल असेंबली के सामने पेश की गई मेरी रिपोर्ट व्यापार के लिए राइट टु फ़ूड एजेंडा की बात करती है। यह ध्यान में रखते हुए कि अक्टूबर में जनरल असेंबली में पेश की जाने वाली मेरी अगली रिपोर्ट कोविड-19 महामारी और खाद्य संकट पर होगी, मैं आपके साथ इस विषय पर चर्चा करने के लिए मौजूद रहूँगा। मैं आपको यह भी बताना चाहूँगा कि मैं ऐसे ही ख़त आईएमएफ़, डबल्यूएफ़पी और वर्ल्ड बैंक के नेताओं को भी लिख रहा हूँ। इसके साथ ही यह ख़त इंटरनेशनल लेबर ऑर्गनाइज़ेशन, कमेटी ऑन वर्ल्ड फ़ूड सेक्युर्टी और यूएन फ़ूड एंड एग्रिकल्चर ऑर्गनाइज़ेशन के नेताओं तक भी जाएगा। मैं यह ख़त भेजने के बाद ओएचसीएचआर की वेबसाईट के माध्यम से इस ख़त में पेश किए गए विचारों को सार्वजनिक भी करने वाला हूँ।

मिस कोंजो-इवाला, कृपया मेरे विचार स्वीकार करें।

माइकल फ़खरी राइट टु फ़ूड के विशेष दूत

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ एक एशिया में आधारित क्षेत्रीय थिंक टैंक है जो व्यापार और विकास की राजनीतिक अर्थव्यवस्था, लोकतंत्र और जनता के विकल्पों पर अनुसंधान और नीति विश्लेषण करता है। यह राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय गठबंधनों में लोगों के आंदोलन और सिविल सोसाइटी संगठनों के साथ काम करता है और नई दिल्ली, मनीला, फ्नोम पेन और बैंकॉक में कार्यालय हैं।

रोजा लक्सेमबर्ग स्टिफ़्टुंग (आरएलएस)

रोज़ा लक्समबर्ग स्टिफ्टंग (आरएलएस) एक जर्मनी में आधारित फाउंडेशन है जो दक्षिण एशिया के साथ-साथ दुनिया के अन्य हिस्सों में गंभीर सामाजिक विश्लेषण और नागरिक शिक्षा के विषयों पर काम करती है। यह स्वतंत्र, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था को प्रोत्साहित करती है और समाज और निर्णय-निर्माताओं के लिए वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का लक्ष्य रखती है। अनुसंधान संगठन, स्वतंत्रता के लिए समूह और सामाजिक कार्यकर्ता उनके पहलों का समर्थन किया जाता है जो अधिक सामाजिक और आर्थिक न्याय प्रदान करने की क्षमता रखने वाले मॉडल विकसित करने के लिए पहुंच देते हैं।

ऑल इंडिया पीपल्स साइंस नेटवर्क (एआईपीएसएन)

ऑल इंडिया पीपल्स साइंस नेटवर्क (एआईपीएसएन) भारत के कुल 40 से अधिक पीपल्स साइंस संगठनों का एक नेटवर्क है। एआईपीएसएन विज्ञान और समाज के इंटरफेस पर विभिन्न मुद्दों पर काम करता है जैसे विज्ञान और प्रौद्योगिकी नीति, स्वायत्तता, शिक्षा, स्वास्थ्य और फार्मास्युटिकल, ग्रामीण प्रौद्योगिकी, वैज्ञानिक स्वभाव या विज्ञान और तर्क, और पर्यावरण, जहाँ लिंग और सामाजिक न्याय संबंधित मुद्दों पर विशेष जोर दिया जाता है। यह अपने काम में विभिन्न संचार रणनीतियों का उपयोग करता है जैसे प्रकाशन, ब्रीफिंग नोट्स, स्लाइड शो, वीडियो फिल्में, सार्वजनिक सभाएं, गीत और सड़क नाटक।